ओ३म्

हरिः पवित्रे अर्षति। ऋ ६.३.६

श्रुति दर्शन

त्रैमासिक

वर्ष-प्रथम अंक-तृतीय, माह-मार्च, २०१८, फाल्गुन मास शुक्ल पक्ष पूर्णिमा, संवत् २०७४

.....वासन्तं वसन्ते!!

सत्यनारायण वेद प्रचार ट्रस्ट, लखनऊ

(रजि. 338/2009)

चित्रावली

वार्षिकोत्सव के अवसर पर विविध क्षेत्रों में दैनिक प्रभात फेरी की झलकियाँ

गणतंत्र दिवस पर अतिथियों द्वारा ध्वजारोहण

ध्वजारोहण के अवसर पर उपस्थित विद्यार्थी

वेद प्रचार मण्डल सीता विहार द्वारा तहरी भोज

ओ३म्

सत्य नारायण वेद प्रचार ट्रस्ट का मुख-पत्र

श्रुति दर्शन

अध्यात्मिक, सामाजिक एवं त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष-प्रथम अंक-तृतीय मास-मार्च, 2018

वेद तथा सृष्टि सम्वत् १९६०८५३११८
विक्रम सम्वत्-२०७४
फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा
लखनऊ नगर

सम्पादक-
आचार्य विश्वव्रत शास्त्री
मो. ७७८३६३७४५५

प्रधान सम्पादक-
डॉ. सत्यकाम आर्य
प्रदीप श्रीवास्तव

प्रबन्ध सम्पादक-
आर.के. शर्मा
नवीन कुमार सहगल

सहायक सम्पादक-
शिव शंकर वैश्य
सर्व मित्र

कार्यालय-
सी/१६६,
जानकी विहार कालोनी,
जानकीपुरम्, लखनऊ
६४१५६१०५०२, ७७८३६३७४५५

सदस्यता शुल्क-
वार्षिक रू. १००/-
आजीवन रू. १६००/-
श्रुति पोषक रू. ११०००/-
श्रुति पालक रू. २१०००/-
श्रुति संरक्षक रू. ५१०००/-

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	2
2.	महामृत्युञ्जय मंत्र	4
3.	कवित्त	7
4.	वैदिक संहिताओं के आलोक में	8
5.	यह स्वर्णभारत भूमि	12
6.	क्रियामय दीर्घ जीवन	13
7.	आधुनिक मानव पर विज्ञान का प्रभाव	15
8.	निराकार ईश्वर की उपासना	19
9.	स्वर्ग और नरक	24
10.	जटायु सम्पाति	27
11.	श्रीराम और मांसाहार	30
12.	ध्वनि प्रदूषण और एक सामाजिक समस्या	32
13.	वेद परिचय	34
14.	वैदिक काल की नारियाँ	38
15.	शिव की पहचान	39
16.	ब्रह्मचारी दयानन्द	41
17.	जड़ देवता	45
18.	पंच क्लेश	49
19.	महर्षि दयानन्द और विश्व शांति	51
20.	हमारी प्रश्नोत्तरी	54
21.	विशेष सहयोगी एवं आजीवन सदस्य	55
22.	श्रद्धांजलि	56

पत्रचार का पता- ५/११८, जानकीपुरम विस्तार, निकट-अटल चौक, लखनऊ-२२६०२१

सम्पादक की कलम से...

श्रुति दर्शन

आग को ऐसा सहेजा, क्रान्ति फूँकी थी निराली।
वेद की जलती ऋचा से जिन्दगी ऐसी सजा ली।।
साधना आलोक की अभिव्यक्तियों में लय हुई क्यों?
तुम जले तो भोर आया, तुम बुझे तो थी दिवाली।।

भारत में उन्नीसवीं शताब्दी का पुनर्चेतना काल तत्कालीन इतिहास के अध्येताओं के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है। विदित हो कि उस कठिन काल में नैतिक सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन में सर्वत्र अशान्ति, अस्थिरता तथा अराजकता व्याप्त थी। सम्पूर्ण भारत सांस्कृतिक संकट की चपेट में था। लोग अन्धाविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों से ग्रस्त थे। देश 600 वर्ष मुगलों तथा 200 वर्ष तक अंग्रेजों के आधिपत्य में था। सच तो यह था कि जनता जनार्दन को शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा देने वाली पराधीनता किंकर्त्तव्यविमूढ़ता का पर्याय बन गयी थी। स्वतन्त्रता, विश्वबन्धुत्व तथा एकता जैसे समाज हितकारी उदात्तभाव किसी भारतीय के मन मस्तिस्क में ही न आते थे। भारतीय शिक्षा पद्धति स्वदेशी के प्रति हेय एवं विदेशी के प्रति गहन प्रेम भावों को उद्दीप्त कर रही थी। ऐसे युग में पुनर्जागरण तथा सांस्कृतिक पुनरूत्थान के अग्रदूत, भारत की सुप्त पराधीन जाति की हृत्तन्त्री को झंकृत कर उसे नव स्फूर्ति तथा नवचेतना प्रदान करने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती का इस पुण्य धराधाम पर आविर्भाव हुआ। सचमुच उसने यम-नियमों के अनुपालन से प्राप्त तप-त्याग के बलपर विभिन्न क्षेत्रों में धूम मचा दी। भारतीय जनमानस को झकझोर दिया। सच तो यह है कि उस तपस्वी ने प्राचीन गौरव, अस्मिता और स्वराज्य की सच्ची अवधारणा से तत्कालीन लोगों को परिचय प्राप्त कराया। उसने सामाजिक कुरीतियों एवं अंधविश्वासों के केचुल को उतार फेंकने की प्रेरणा दी। मातृशक्ति के सम्मान तथा दलितों के लिये सामाजिक न्याय एवं सम्मान दिलवाने की उत्कृष्टतम् कार्य किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने स्वधर्म, स्वभाषा, स्वराष्ट्र और स्व संस्कृति को स्वदेशोन्नति का आधार मानकर जनजागृति के क्षेत्र में महान कार्य किया। स्वामी जी द्वारा कृत सामाजिक कार्यों एवं सुधारों से अतिशय प्रेरित एवं प्रभावित होकर मैडम ब्लेवित्सिकी ने स्वहृदयोद्गार प्रकट किये ''यह बिल्कुल सत्य बात है कि शंकराचार्य के बाद भारत भूमि पर कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो स्वामी दयानन्द जी से बड़ा संस्कृतज्ञ, उनसे बड़ा दार्शनिक उनसे भी अधिक तेजस्वी वक्ता तथा कुरीतियों पर टूट पड़ने में उनसे अधिक निडर एवं निर्भीक रहा हो।'' किसी कवि ने ठीक लिखा है कि-

''इस तरह का हमने ऐसा रहनुमा देखा नहीं।
यूँ निडर यूँ बेखतर यूँ पेशवा देखा नहीं।।

महर्षि दयानन्द के अनगिनत गुणों में निर्भयता एवं निडरता सर्वोपरि थी। जब काशी में शास्त्रार्थ

मण्डली द्वारा उपद्रव करने की आशंका हुई तो उनके भक्त बलदेव ने उन्हें सावधान करना चाहा तो स्वामी महाराज ने कहा, ''बलदेव। कोई चिन्ता की बात नहीं। अन्धकार की तमोराशि को जीतने के लिये सूर्य अकेला ही पर्याप्त होता है। एक मैं-आत्मा हूँ, एक परमात्मा है और एक ही धर्म है। फिर डर और भय किसका?'' क्योंकि-

''धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी,
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनम्,
एतेयस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद्भयं योगिनः।।

धैर्य जिसका पिता हो, क्षमा जिसकी माता हो, शान्ति गृहस्था पत्नी हो, सत्य पुत्र हो, दया बहन हो, मन का संयम भ्राता हो, भूमि ही शैय्या है, दिशायें ही वस्त्र हैं, ज्ञानरस ही भोजन है, ऐसे योगी को संसार में भय कहाँ? तभी तो वह कहता है कि ''चाहे चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे। यदि लोग हमारी अँगुलियों की बत्तियां बनाकर जला डालें तो भी कोई चिन्ता नहीं, मैं सत्यमेव उपदेश ही करूंगा।'' मृत्यु का नाम सुनते ही बड़े-बड़े योद्धाओं और सुधारकों के छक्के छूट जाते हैं किन्तु अजमेर में भिनाय कोठी में मृत्यु पर शैय्या पर लेटे ऋषिवर की मुखमुद्रा से स्फूर्तिदायक आभा अन्तिम क्षणों तक तिरोहित नहीं हुई। निश्चितया उनके पूर्व जन्म के कर्म बहुत श्रेष्ठ थे। उनपर प्रभु की असीम कृपा थी। उन्होंने 'संश्रुतेन गमेमहि मा श्रुतेन विराधिषि' की प्रार्थना को आत्मसात कर लिया था। उन्होंने 'देवा इवामृतं रक्षमाणाः सायं प्रातः सौमनसो वो अस्तु' के परम निर्देश का साक्षात्कार कर लिया था। उन्होंने ''ब्रह्म वर्म ममान्तरम्'' के आदर्श को हृदयङ्गम् कर लिया था। हाँ इन समस्त दिव्यताओं के आधार में एक अद्भुत और विचित्र घटना थी जो शिवरात्रि महापर्व के दिन घटी। शिवलिंग पर नैवेद्य खाने की लालसा में चूहा की उछल कूद ने मूल शंकर के हृदय में कौतूहल, आत्मा में चकाचौंध बिजली सी उत्पन्न कर दी। बस प्रश्नों एवं जिज्ञासाओं ने बालक को ऐसा घेरा कि फिर वह कभी रूका नहीं, झुका नहीं, यह कहते हुये कि-

जा मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।
कब मरिये कब पाइये, पूर्ण परमानन्द।।

-सत्यकाम आर्य
प्र. सम्पादक

गतांक से आगे.............

महामृत्युञ्जय मन्त्र

-आचार्य विश्वव्रत शास्त्री
संस्थापक-सत्यनारायण वेद प्रचार ट्रस्ट,
लखनऊ

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे...............

ऋग्वेद-७.५६.१२

पत्रिका के पिछले अंकों में आप सभी सुधी पाठकों ने क्रमशः मन्त्र की भूमिका और मन्त्र से पूर्व नियोजित 'ओम्' पद की व्याख्या पढ़ी। इस अंक में हम ऋग्वेद की इस पावन ऋचा के पूर्वार्ध- ''त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्'' की कुछ चर्चा करते हैं।

त्र्यम्बकम् अर्थात् अकार, उकार और मकार रूप तीन अक्षरों से नाम है जिसका उस ओंकार की **यजामहे** संगति करें अथवा स्तुति, प्रार्थना, उपासना करें, **सुगन्धिम्** (वह) सुगन्धि युक्त **पुष्टिवर्धनम्** (और) पुष्टि का बढ़ाने वाला है।

भावार्थ-आओ! हम सब जने मिलकर उस सुगन्धि युक्त और पुष्टि के बढ़ाने वाले परमेश्वर (जिसका मुख्य नाम ओ३म् है) की संगति करें।

मन्त्रांश का संक्षेप में अर्थ समझने के बाद आइए अब हम कुछ विस्तार से विचार करें-

त्र्यम्बकम्- इस पद में प्रथम आये हुए त्रि का अर्थ है तीन। इस पद में दूसरा शब्द है अम्ब। अम्ब का अर्थ होता है शब्द अथवा ध्वनि।[1] अर्थात् अकार, उकार और मकान रूप तीन विशेष ध्वनियों से युक्त ओंकार (ओम्) पद।[2]

व्याकरण में जिस प्रकार सप्तकम् और पञ्चकम् आदि पदों की सिद्धि होती है।[3] उसी प्रकार 'त्र्यम्बकम्' की सिद्धि होकर अर्थ होगा- तीन ध्वनियों का समूह अर्थात् अ, उ, म् इन तीनों का समूह ओ३म् है इसे ही त्र्यम्बक कहते हैं। त्र्यम्बक का तत्वार्थ होगा-तीन विशेषताओं का समूह और इस प्रकार सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कर्त्ता होने के कारण परमेश्वर का नाम त्र्यम्बक है। ज्ञान कर्म उपासना रूप वेद ज्ञान के दाता होने के कारण अथवा ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों अनादि सत्ताओं से सम्बन्धित वेद ज्ञान के प्रदाता होने के कारण ईश्वर को त्र्यम्बक कहा गया है।

इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं। **आध्यात्मिकदुःख** अविद्या, राग-द्वेष मूर्खता आदि। २- आधिभौतिक दुःख-जो शत्रुओं व्याघ्र व सर्प आदि द्वारा प्राप्त हों। ३- आधिदैविक दुःख-अनावृष्टि, अतिवृष्टि, अतिशीत, अति उष्ण तथा मन व इन्द्रियों की अशान्ति से उत्पन्न होने वाले।

इन त्रिविध तापों से बचने के लिए उपासक जिसकी उपासना करते हैं वह परमेश्वर 'त्र्यम्बक' है।

---

(१) अबि शब्दे
(२) अकारोकारमकाराणां मात्राणामपि वाचकाः।..लिंग पुराण ३५.१६.२०
(३) संज्ञासङ्घसूत्राध्ययनेषु। (अष्टा.५.१.५८)

अतः त्र्यम्बकम् का अर्थ हुआ सर्वातिशयी और सभी का पूज्य परमेश्वर। अब ''त्र्यम्बकम्'' की विशेषतायें जानने के लिए मन्त्र में आये सुगन्धिम् और पुष्टिवर्धनम् इन दोनों विशेषणों पर विचार करें।

'सुगन्धिम्' अर्थात् सुगन्धियुक्त। यह ओ३म् रूप त्र्यम्बक परमेश्वर का एक विशेषण है कि वह सुगन्धित है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह नासिका के गन्ध गुण से युक्त है और सूँघा जा सकेगा। यहां सुगन्धि का अर्थ है कि जिस प्रकार अत्यन्त सूक्ष्म रूपेण सुगन्धि पुष्पों के कण-कण में व्याप्त है, उसी प्रकार परमात्मा त्र्यम्बक भी प्रकृति के कण-कण में व्यापक है[४], और कोई भी जीव उसकी दृष्टि से परे नहीं है। पथिक जी के एक भजन की निम्न पंक्तियाँ इस ''सुगन्धिम्'' पद को स्पष्ट करती हैं-

कण-कण में बसा प्रभु देख रहा, चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।
कोई उसकी नजर से बच न सका, चाहे पुण्य करो चाहे पाप करो।।

आइए अब मन्त्र में आये त्र्यम्बक के दूसरे विशेषण 'पुष्टि वर्धनम्' की चर्चा करें। पुष्टि वर्धनम् का अर्थ है पुष्टि देने वाला अर्थात् पालक व पोषक। वह त्र्यम्बक जहाँ सुगन्धि के रूप में समाज व्यापक है वहीं वह सबका पालक पोषक भी है। चाणक्य नीति का एक प्रसिद्ध श्लोक है।[५] जिसका भाव है-

बुद्धिमान मनुष्य को अपने आहार, भोजन के सम्बन्ध में सोंच विचार नहीं करना चाहिए। उसे तो केवल धर्म की चिन्ता करनी चाहिए, क्योंकि मनुष्य का आहार तो उसके जन्म के साथ ही उत्पन्न हो जाता है। मनुष्य को आहार की चिन्ता नहीं करनी चाहिये क्योंकि त्र्यम्बक परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वपोषक है। वह सुगन्धियुक्त पुष्टिवर्धन परमेश्वर वेद में प्रतिज्ञा कर रहा है-

आत्मसमर्पण करने वालों को भोजन मैं देता हूँ।[६]

इस चराचर जगत को ही नहीं अपितु त्र्यम्बक परमेश्वर ने पूरी त्रिलोकी (ब्रह्माण्ड) को थामा हुआ है। क्या वह सर्वव्यापी व सर्वपोषक त्र्यम्बक तुझको त्याग सकता है?क्या वह तुमको धारण न करेगा? सुनो-

दाँत न थे तब दूध दियो, अब दाँत दिये तो का अन्न न दैहें।
जीव बसे जल में थल में, सबकी सुधि लेय सो तेरी भी लैहें।।
काहे को सोच करे मन मूरख, सोच करे कछु हाथ न ऐहें।
जान को देत अजान को देत, जहान को देत सो तोकू न दैहें।।

अब तक हमने मन्त्र में आये तीन पदों पर विचार किया। 'सुगन्धिम् पुष्टिवर्धनम् और त्र्यम्बकम्' आइए अब हम 'यजामहे' पद पर भी कुछ विचार करें।

यजामहे का अर्थ है हम यजन (यज्ञ) करें। यज्ञ में भक्ति के सभी अंगों का समावेश है। यज्ञ में देव पूजा अर्थात् ईश्वरीय गुणों का वर्णन किया जाता है यही स्तुति है। यज्ञ में परमेश्वर से अभीष्ट पदार्थो की याचना की जाती है इसे प्रार्थना कहते हैं और यज्ञ में ईश्वरीय सानिध्य प्राप्त किया जाता है इसे उपासना भी कहते हैं। उपासना का अर्थ है अभीष्ट देव के समीप बैठना। समीप बैठने को ही सत्संग या संगति करना भी कहते हैं।[७]

(४) पुष्पेषु गन्धवत् सूक्ष्मः सुगन्धिः परमेश्वरः। लिंग पुराण-३५-११
(५) नाहारं चिन्तयेत् प्राज्ञः धर्ममेकं हि चिन्तयेत्।
आहारो हि मनुष्याणां, जन्मना सह जायते।।....चाणक्यनीति-१२-१८
(६) अहं दाशेषु वि भजामि भोजनम्। ऋ.१०.४८.१
(७) यज् संगति करणे।

इस प्रकार यजामहे के निम्न अर्थ हुए-हम यज्ञ करें, स्तुति करें, प्रार्थनोपासना करें, संगति करें भक्ति करें, सत्संग करें आदि। इनमें मुख्यता स्तुति, प्रार्थना और उपासना को दी गयी है, अतः आइए इन तीनों पर भी कुछ विचार मन्थन किया जाये।

स्तुति- शास्त्र में स्तुति का अर्थ लोकविश्रुत अर्थ (प्रशंसा-गुणगान, बड़ाई आदि) से भिन्न है। वस्तुतः दोषों में गुणों और गुणों में दोषों का कथन स्तुति नहीं 'असूया' है।[8] गुणों में गुणों का और दोषों में दोषों का आरोपण करना अर्थात् जो पदार्थ जैसा है उसे वैसा ही कहना अर्थात् यथार्थ कहना स्तुति है।[9] ईश्वर जो चाहे अथवा सबकुछ कर सकता है, यह स्तुति नहीं असूया है। क्योंकि अन्याय नहीं कर सकता, अपराध क्षमा नहीं कर सकता, चोरी व्यभिचारादि कुकर्म नहीं कर सकता। किन्तु 'ईश्वर अपने गुण कर्म स्वभाव के अनुसार अपने सब काम बिना किसी की सहायता के कर सकता है, कहना ही ईश्वर की स्तुति करना है। इस प्रकार ईश्वर के गुणों का स्तवन या चिन्तन करना स्तुति है। यह स्तुति तीन प्रकार से की जाती है-**मानसिक** ध्यान व जय द्वारा, **मौखिक** उच्चारण द्वारा तथा **संगीत** द्वारा। इस महामृत्युञ्जय मन्त्र में संकेत है कि उत्तम स्तुति वह है जो उपासक को मृत्यु से बचाकर अमरता का पथिक बना दे। ईश्वर की स्तुति का पूर्ण लाभ तभी है जब स्तुति करने वाला ईश्वर के गुणों को अपनाने-यथासम्भव उन्हें अपने अन्दर धारण करने का प्रयास करें।

प्रार्थना- इससे निरभिमानता आती है और परमेश्वर से उत्साह व सहायता की प्राप्ति होती है। माँगा उससे जाता है जिसके पास वस्तु हो तथा माँगता वही है जिसके पास वस्तु का अभाव हो। इस स्थिति में माँगने वाले में हीनता का भाव उत्पन्न होता है अर्थात् उसका अहंकार नष्ट होता है। किसी के आगे हाँथ पसारते ही आँखे नीची हो जाती हैं। सब कुछ प्राप्त कर लेने के बाद भी जब मनुष्य दिन रात के आरम्भ में अर्थात् सायं प्रातः की सन्धि बेला में त्र्यम्बक के सामने नत मस्तक होकर अमृत व ऐश्वर्यादि की माँग करता है, तो अभिमान कहाँ ठहर सकता है? इसके साथ ही उसे यह विश्वास हो जाता है कि आवश्यकता पड़ने पर उसे कहीं से सहायता मिल सकती है तो वह दो गुने उत्साह से आगे बढ़ता हैं। गिरने लगूँगा तो कोई सम्भालने वाला है यह विचार ही उसे बड़े से बड़े काम में हाँथ डालने का साहस प्रदान करेगा। पानी तैरने में उसी की सहायता करता है जो स्वयं हाथ पैर चलाता है। इसी प्रकार पुरूषार्थ पूर्वक की गयी प्रार्थना सफलता को प्राप्त होगी प्रार्थी को इसका ध्यान रख आलस्य को त्याग प्रयत्नशील होना ही होगा।

उपासना-इससे अभिप्राय है-समीप स्थिति (उप-समीप, आसना-बैठना[10]) अर्थात् उपासक उपासना काल में ईश्वर को और स्वयं को परस्पर समीप स्थित हुआ जाने। ऐसी भावना बनाकर त्र्यम्बक की उपासना करनी चाहिए। उपासना के समय उपासक अपने मन को परमेश्वर में स्थित रखे। ऐसी अवस्था में उपासक पर बहुत कुछ परमात्मा के गुण कर्म-स्वभाव का प्रभाव पड़ता ही है। उपासक की आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है और परमेश्वर के सानिध्य से नित्यप्रति ज्ञान बढ़ाकर मुक्ति तक पहुंच जाता है।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् अर्थात्-आइए हम सब लोग कण-कण में व्यापक तथा सबका पालन-पोषण करने वाले उस परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना करें जिसका मुख्य नाम

---

(८) **दोषेषु गुणारोपणं गुणेषु दोषारोपणं च असूया।**

(९) **गुणेषु गुणारोपणं दोषेषु दोषारोपणं च स्तुतिः।**

(१०) **आस उपवेशने।**

कवित्त

-पं० यज्ञदत्त शर्मा

छूतछात त्याग का अछूता उपदेश दिया,
भद्दी भेदभावना के भूत को भगा दिया,
बैर को विसार पुण्य-प्रीति का पढ़ाया पाठ,
हृदयों को प्रेम के पीयूष में पगा गया,
झूठे देवी-देवों के प्रपञ्च से छुड़ा के एक
ईश की उपासना में सबको लगा गया।
देशहित साध के दिवाली को सदा के लिये
आप सो गया पै ऋषि जग को जगा गया।।

सकल रज-रेणुओं को मणियों पर वारि डारूँ।
मणियों को वारि डारूँ सूरज और चन्द्र पै।।
सूरज और चन्द्रमा को स्वर्गहु पै वारि डारूँ।
स्वर्गहु को वारि डारूँ भारत सुखकन्द पै।।
भारत की भूमि को, भक्तों पै वारि डारूँ।
भक्तों को वारि डारूँ देवता स्वच्छन्द पै।।
सकल देवताओं को ऋषियों पै वारि डारूँ।
ऋषियों को वारि डारूँ ऋषी दयानन्द पै।।

(साभार-दिव्य दयानन्द)

वैदिक संहिताओं के आलोक में - जल-प्रदूषण और पर्यावरण - परिशोधन

-डॉ० ज्वलन्तकुमार शास्त्री

आधुनिक पर्यावरण का चिन्तन प्रदूषण की भयावहता से प्रारम्भ होता है। औद्योगिक क्रान्ति की अन्धी दौड़ में शामिल पाश्चात्त्य जगत् को प्रारम्भ में यह अन्देशा भी नहीं था कि भौतिक विकास की कीमत इतनी मँहगी होगी। उन्नीसवीं शती में 'स्मोग दुर्घटना एवं सल्फर डाई आक्साइड' से हुई अम्लीय वर्षा की घटना से वैज्ञानिक चौंके और इस क्षेत्र में अध्ययन-मनन और चिन्तन का दौर प्रारम्भ हुआ। १८ जुलाई, १६८३ के दिन मुम्बई में भी तेजाबयुक्त वर्षा हो चुकी है। पर्यावरण-प्रदूषण की चिन्ताजनक स्थिति को देखते हुए ५ जून, १६७२ को स्टाकहोम (स्वीडन) में १२ बारह राष्ट्रों की बैठक इस विषय पर विचार करने के लिए आयोजित की गई। जिसके फलस्वरूप विभिन्न राष्ट्रों द्वारा पर्यावरण-सुरक्षा हेतु प्रभावशाली कदम उठाये जा रहे हैं।

प्रदूषण मुख्यतः पाँच ५ क्षेत्रों में हैं- (i) वायव्य, (ii) जलीय, (iii) पार्थिव, (iv) आकाशीय तथा (v) सामाजिक। हम इस शोध निबन्ध में जलीय प्रदूषण तथा इस निमित वैदिक ऋचाओं के सन्देश को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

मानव तथा उद्योगों द्वारा उत्सर्जित पदार्थों से मुम्बई का समुद्री तट लगभग ८० कि०मी० तक समुद्र के अन्दर प्रदूषित हो चुका है। नदियों का जल प्रदूषण का पर्याय बन चुका है। औद्योगिक इकाइयों द्वारा उत्सर्जित रसायनों से नदियों के जल की गुणवत्ता ही नष्ट नहीं हुई है अपितु जलचरों के अस्तित्व का संकट भी उपस्थित हो गया है। कई नदियाँ नाले में परिवर्तित हो चुकी हैं। नदियों का जल पेय तो अब नहीं रहा कई स्थानों पर स्नान योग्य भी नहीं रह गया है। जहाँ वायु-प्रदूषण के कारण पक्षियों की सौ से भी अधिक प्रजातियाँ लगभग लुप्त हो गई हैं, वहीं जल-प्रदूषण से मेढ़कों की संख्या में भारी कमी आई है, जिससे पारिस्थितिक सन्तुलन गड़बड़ा सकता है। प्रकृति द्वारा प्राप्त जल के प्रदूषित हो जाने के कारण आज मानव भूगर्भीय जल पर आश्रित हो गया है। किन्तु भूगर्भीय जल के अतिदोहन के कारण भूगर्भीय जल का स्तर निरन्तर घट रहा है। वैज्ञानिकों का मानना है कि यदि यह दोहन इसी प्रकार चलता रहा और जनसंख्या वृद्धि का क्रम भी यही रहा तो हमारी जल-उपलब्धता में भारी कमी होगी। सन् १६४७ में जो जल-उपलब्धता ६ हजार घनमी० प्रति व्यक्ति थी वह सन् २०१७ में १६०० सोलह सौ घनमी० होकर रह जाएगी (क्रानिकल, अगस्त-१६६८, पृ० १०७) कहना न होगा कि यदि जल- प्रदूषण और दोहन का यही क्रम चलता रहा तो 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' की यह चेतावनी कि ''अगला विश्वयुद्ध पानी की उपलब्धता के मुद्दे पर होगा'' को सच साबित होने में अधिक देर नहीं लगेगी।

(क) जलों के प्रकार

वेदों में जल कई प्रकार के वर्णित किये गये हैं, उन सभी प्रकार के जलों के लिए यह कहा गया है कि वे सबके लिए प्रदूषणशामक तथा रोगनिवारक हों -

शं त आपो हैमवती शमु ते सन्तूत्स्या :।
शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्या :।।
शं त आपो धन्वन्याꣳ: शं ते सन्त्वनूप्या :।
शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृताः।।

उपर्युक्त मन्त्रों में जलों के निम्नलिखित प्रकार बताये गये हैं-

(i) हैमवतीः आपः - अर्थात् हिमालय के जल। हिमालय में बर्फरूप में रहने वाले, चट्टानों के बीच कुण्डों में भरे हुये तथा पर्वतीय झरनों के रूप प्रवाहित होने वाले जल हैमवती आपः हैं। इस प्रकार के जल में पर्वतों के खनिज द्रव्य तथा औषधियों के रस मिश्रित रहते हैं।

(ii) उत्स्याः आपः- अर्थात् स्त्रोतों के जल। पहाड़ी या मैदानी भूमि को फोड़कर चश्मों के रूप में निकलनेवाले जल उत्स्याः आपः हैं। इस जल में भूमि के अन्दर विद्यमान खनिज पदार्थ मिले रहते हैं। कई चश्मों में गन्धक होता है, जैसे-देहरादूर के समीप 'सहस्रधारा' में गन्धक विद्यमान है।

(iii) सनिष्यदाः आपः- अर्थात् सदा बहते रहने वाले जल।

(iv) वर्ष्याः आपः - अर्थात् वर्षा से मिलने वाले जल। वर्षा का जल ओषधियों, वनस्पतियों तथा प्राणियों को जीवन देनेवाला होता है।

(v) धन्वन्याः आपः- अर्थात् मरुस्थलों के जल।

(vi) अनूप्याः आपः- आर्द्र प्रदेशों के जल।

(vii) खनित्रिमाः आपः- अर्थात् भूमि खोदकर प्राप्त किये जल। कुएँ तथा हाथ के नल आदि के जल इस कोटि में आते हैं। इसलिए भौमिक प्रभाव के कारण किसी कुएँ का पानी मीठा, किसी का खारा आदि होता है।

(viii) कुम्भेभिः आमृताः आपः- अर्थात् घड़ों में रखे जल। घड़े कई प्रकार के होते हैं- मिट्टी, ताँबा, चाँदी, सोना आदि। विभिन्न धातुओं से बनाये गये घड़ों या जलपात्रों में रखे गये जलों में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रभाव देखे जाते हैं।

(ख) जल-शोधन

जलों को प्रदूषित न होने देने तथा प्रदूषित जलों को शुद्ध करने के कतिपय उपायों का संकेत भी वेदों में मिलता है। ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है कि 'वे दिव्य जल हमारे लिए सुखदायक हों, जिनमें वरूण, सोम, विश्वेदेवाः तथा वैश्वानर अग्नि प्रविष्ट हैं।' यहाँ 'वरुण' शुद्ध वायु या जलशोधक कोई गैस है। 'सोम' चन्द्रमा या सोमलता है, 'विश्वेदेवाः' सूर्यकिरणें हैं तथा 'वैश्वानर अग्नि' सामान्य आग या विद्युत है। इनके द्वारा अशुद्ध जल को शुद्ध किया जा सकता है। एक दूसरे याजुष मन्त्र में प्राकृतिक रूप से या यन्त्रों द्वारा सूर्य के ताप (रश्मि) को जल में पहुँचाना जल-शोधन का एक विशिष्ट उपाय कहा गया है, साथ ही दर्भ या कुशा (घास) को भी जलशोधक बताया गया है।' जलाशय या तालाब में स्थिर रहनेवाले जल प्रदूषित हो जाते हैं, अतः वेदों में बहते हुए जलों को अपेक्षाकृत अच्छा माना गया

है। बहती हुई नदियाँ अपने जल को मधु से संसृष्ट कर लेती है। बिना रुके बहने वाले जल पवित्रतादायक होते हैं। रात-दिन बहने वाले जलों का वेद में उत्सुकता के साथ आह्वान किया गया है। हिमालय से बहकर आने वाले जलों को हृदयदाह दूर करने वाला बताया गया है। नदियों के जल यदि अशुद्ध पदार्थों से प्रदूषित हो जाएँ, तो विशाल स्तर पर उन्हें शुद्ध करने के अभियान का संकेत भी वेद में मिलता है। इसमें यह कहा गया है कि अशुद्ध वस्तुओं ने यदि तुम्हें अपवित्र कर दिया है, तो तुम्हें मैं शुद्ध कर लेता हूँ। ऋग्वेद में लिखा है कि यदि नदियों में विष उत्पन्न हो गया है तो सब विद्वान जन मिलकर उसे दूर कर लें। वेदों का स्पष्ट आदेश या सन्देश है कि सभी नदियाँ प्रदूषणरहित हो जाएँ- 'शिवा देवीरशिपदा भवन्तु, सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु।' इस प्रकार हम स्पष्टरूप से देखते हैं कि नदियों के प्रदूषण को दूर करने का स्पष्ट सन्देश या आदेश वेदों ने दिया है। पुनरपि धार्मिक रीति-रिवाजों के माध्यम से हम गंगा, यमुना, गोमती आदि नदियों को प्रदूषित कर रहे हैं। अतः उन रीति-रिवाजों, परम्पराओं और प्रचलित तथा कथित धार्मिक अन्धविश्वासों को हम तिलाञ्जलि दे दें, जिनके कारण हमारी पवित्र नदियाँ दिनानुदिन और अधिक प्रदूषित हो रही हैं। जिस शव को अपने घर में चौबीस घण्टे भी बर्दाश्त नहीं कर पाते उसे बड़े इत्मिनान से गंगा के हवाले कर देते हैं। अस्थियाँ तो हम गंगा में ही विसर्जित करेंगे। चिताओं की कतारें गंगा के पानी से बुझकर स्वर्ग का आश्रय लेती हैं। देश की जनसंख्या रेकॉर्ड तोड़ रही है। असंख्य जन्म-मरण, मुण्डन, कर्णछेदन, पर्व-स्नान, पकवान तथा मिष्ठान का अर्पण, फूल-पान और नारियल, रोली और चावल का समर्पण इतना सब कुछ रोजाना गंगा आदि पवित्र कही जानेवाली नदियों के पानी के बहाव में छोड़ दिया जाता है। इस प्रकार के धार्मिक पाखण्डों और कर्मकाण्डों को छोड़े बिना गंगा का जल शुद्ध नहीं हो सकता। कारखानों से बहते रसायनों, सीवर के मलयुक्त अपद्रव्यों तथा गंगादि नदियों के किनारे होने वाले कर्मकाण्डों, पाखण्डों और अन्धविश्वासों को दूर किये बिना जलीय पर्यावरण का परिशोधन सम्भव नहीं है।

(ग) शुद्ध जलों का महत्त्व

वेदों में शुद्ध जल के महत्व का वर्णन बहुतायत में प्राप्त होता है। शुद्ध जल के अन्दर अमृत होता है। निर्मल जल में औषध का निवास रहता है। शुद्ध जल के सेवन से मनुष्य रसवान् हो जाता है। शुचि, निर्मल कान्ति को सींचनेवाले मधुर जलों का ही हम उपयोग करें। जैसे सन्तान का हित चाहनेवाली माताएँ सन्तान को अपना शिवतम रस दूध पिलाती हैं, वैसे ही शुद्ध जल सेवनकर्ता को अपना शिवतम रस प्रदान करते हैं। शुद्ध जल हमारे लिए मातृतुल्य और शोधक होते हैं। वे अपने अन्दर विद्यमान विद्युत से हमें पवित्र करते हैं। वे समस्त प्रदूषण को बहा ले जाते हैं। उनसे पवित्र होकर मनुष्य उघर्म हो जाता है।) शुद्ध जलों में ऊर्जा, अमृत, तेज एवं पोषक रस का निवास होता है। शुद्ध जल का पान किये जाने पर पेट के अन्दर पहुँचकर पाचन-क्रिया को तीव्र करते हैं। स्वादिष्ट जल रोगों को दूर करनेवाले, शरीर के सभी प्रकार के प्रदूषणों के परिमार्जक तथा जीवन-यज्ञ को बढ़ाने वाले होते हैं। शुद्ध जल का इतना ही महत्व नहीं है अपितु वे मन, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, आत्मा, प्रजा, पशु तथा जनगणों को भी तृप्ति प्रदान करते हैं। पावन वैदिक ऋचाओं की परिकल्पना की मातृभूमि का स्वरूप इस प्रकार है-

यस्यामापः परिचराः समानीरहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो दुहामथो उक्षतु वर्चसा।।

-अथर्ववेदीय पृथिवी सूक्त, १२।१।६

अर्थात्- जिस भूमि की सेवा करनेवाली नदियाँ दिन-रात समानरूप से बिना प्रमाद के बहती रहती हैं, वह भूरिधारा भूमिरूपी गौमाता हमें जलधारा रूप दूध सदा देती रहे।

पाद-टिप्पणियाँ

१. यासु राजा वरुणों यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वाग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु।। - ऋ० ७।४६।४
२. सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। - यजु० १।१२
३. अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्। पृञ्चतीर्मधुना पयः।। - ऋ० १।२३।१६
४. समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः। - ऋ० ७।४६।१
५. सस्त्रुषीस्तदपसो दिवा नक्तं च सस्युषीः वरेण्यक्रतुरहमपो देवीरुप ह्वये।। - अथर्व० ६।२३।१
६. हिमवतः प्र स्त्रवन्ति सिन्धौ समह सङ्गमः आपो ह मह्यं तद्देवीर्ददन्हृद्द्योतभेषजम्।।
- अथर्व० ६।२४।१
७. यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि। - यजु० १३।१३
८. यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम्।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्मेन रपसा विदत्त्सरुः।। - ऋ० ७।५०।३
९. ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु।।
- ऋ० ७।५०।४
१०. अप्स्व न्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये। देवा भवत वाजिनः।।
- ऋ० १।२३।१६
११. आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि। - ऋ० १।२३।२३
१२. तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम।। - ऋ० ७।४७।१
१३. यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः। उशतीरिव मातरः।। - ऋ० १०।६।२
१४. आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूत एमि।। - ऋ १०।१७।१०
१५. ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। - यजु० २।३४
१६. श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः।
ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽअनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः।।
- यजु० २।१२
१७. मनो मे तर्पयत वाचं मे तर्पयत प्राणं मे तर्पयत् चक्षुर्मे तर्पयत् श्रोत्रं मे
तर्पयतात्मानं मे तर्पयत प्रजां में तर्पयत पशून्मे तर्पयत गणान्मे
तर्पयत गणा मे मा वितृषन्।। - यजु० ६।३१।

यह स्वर्ण-भारत-भूमि, बस, मरघट-मही बन जायेगी

दाँतों तले तृण दाबकर हैं दीन गायें कह रहीं,
हम पशु तथा तुम हो मनुज, पर योग्य क्या तुमको यही !
हमने तुम्हें माँ की तरह है दूध पीने को दिया,
देकर कसाई को हमें तुमने हमारा वध किया।।

जो जन हमारे मांस से निज देह पुष्टि विचार के,
उदरस्थ हमको कर रहे हैं, क्रूरता से मार के।
मालूम होता है, सदा धारे रहेंगे देह वे-
या साथ ही ले जायेंगे उसको बिना संदेह वे।।

हा! दूध पीकर भी हमारा पुष्ट होते हो नहीं,
दधि घृत तथा तक्रादि से भी तुष्ट होते हो नहीं।
तुम खून पीना चाहते हो, तो यथेष्ट वही सही,
नर-योनि हो, तुम धन्य हो, तुम जो करो थोड़ा वही।।

क्या वश हमारा है भला, हम दीन हैं, बलहीन हैं,
मारो कि पालो, कुछ करो तुम, हम सदैव अधीन हैं।
प्रभु के यहाँ से भी कदाचित् आज हम असहाय हैं,
इससे अधिक अब क्या कहें, हा! हम तुम्हारी गाय हैं।।

बच्चे हमारे भूख से रहते समक्ष अधीर हैं,
करके न उनका सोच कुछ देती तुम्हें हम क्षीर हैं।
चरकर विपिन में घास फिर आतीं तुम्हारे पास हैं,
होकर बड़े वे वत्स भी बनते तुम्हारे दास हैं।।

जारी रहा क्रम यदि यहाँ यों ही हमारे ह्रास का-
तो अस्त समझो सूर्य भारत-भाग्य के आकाश का।
जो तनिक हरियाली रही वह भी न रहने पायेगी,
यह स्वर्ण-भारत-भूमि, बस, मरघट-मही बन जायेगी।।

(राष्ट्रकवि स्वर्गीय श्री मैथिलीशरणजी गुप्त की 'भारतभारती' से)

●●●

क्रियामय दीर्घ जीवन

पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतँ् समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। - यजु० ४०।२

कुर्वन्नेव= कर्मों को करते हुए ही इह= इस लोक में तूने शतं समाः= सौ वर्ष पर्यन्त जिजीविषेत्= जीने की कामना करना। एवंत्वयि= तेरे विषय में ऐसा ही निश्चय है। इतः अन्यथा= इससे और प्रकार का मार्ग न अस्ति= तेरे लिए नहीं है। न कर्म लिप्यते नरे= नर मनुष्य में कर्म लिप्त नहीं होता।

Performing, verily, your duty in this world you should desire to live a full hundred years. This alone is required of you, for there is no other right path for you. Action clingeth not such a man.

प्रस्तुत मन्त्र में प्रभु आदेश करते हैं कि- (१) इह इस लोक में तथा इस मानवजीवन में (कर्माणि) कर्मों को 'कुर्वन् एवं' करते हुए ही तुझ जीना है।

(क) संसार का नियम ही 'क्रिया' है यह 'संसार' है, 'संसरति' निरन्तर चल रहा है। जगत् है गति में है। कार्लाइल के शब्दों में -

"What is this universe ? but an infinite conjugation of the verb to do" यह संसार 'कृ' (करना) धातु के विविध रूपों के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। इस गति-मय संसार में अकर्मण्य होने का क्या मतलब?(ख) अकर्मण्यता विनाश व ह्रास से सम्बद्ध है। 'जो पानी खड़ा-वह सड़ा' यह प्रसिद्ध ही है। 'पुष्पिण्यौ चरतो जंघे' चलने वाले की ही जाँघें पुष्ट होती हैं। इन्द्र ने रोहित को यही तो उपदेश दिया कि 'चरैवेति चरैवेति' गतिमय रह और गतिमय ही रह, (ग) मनुष्य 'आत्मा' है-' अत सातत्यगमने निरन्तर गति' (constant motion) वाला है। क्रियाशीलता के अभाव में तो वह 'ख' अपने मन को ही खो देता है (२) प्रभु का दूसरा आदेश है कि 'शतं समाः' सौ वर्ष पर्यन्त 'जिजी विषेत् जीने की कामना करे। जितना दीर्घजीवी बन सके उतना ही बन। इस दीर्घजीव के लिये क्रिया शीलता साधन है। मनुष्य खाट पर पड़ता है तो पड़ ही जाता है यह उक्ति भूलनी न चाहिए। (३) एवं प्रभु ने उपरोक्त दो आदेश देकर कहा कि 'एवंत्वयि' तेरे विषय में ऐसा ही निश्चय है। (इतः) इससे अन्यथा और प्रकार के कोई मार्ग (न अस्ति) तेरे लिये नहीं है। 'कर्म करते हुए सौ वर्ष तक जीना' ही तेरे जीवन का एक मात्र नियम है।

इस पर जीव सोचता है कि (क) इतना लम्बा जीवन क्या करूँगा ?जितना जीवन लम्बा होगा उतने अधिक ही पाप होंगे, पैदा होते ही चला गया बालक अहोभाग्य है कि उससे कोई पाप तो नहीं हुआ, (ख) और कर्म करना भी तो भय से रहित नहीं है। कर्म का फल भोगना होगा, फल भोगने के लिए शरीर लेना पड़ेगा।

ऐसे विचारों के उत्पन्न होने से कुछ उदास हुए जीव से प्रभु कहते हैं कि - अरे दीर्घ जीवन होगा

तो पैदा होते ही...पाप ही क्यों अधिक होंगे! ऐसा भी तो है कि तू प्रतिवर्ष एक-एक क्रतु (यज्ञ) करे और सौ वर्षों के दीर्घ जीवन में तू 'शत-क्रतु' ही बन जाये। और कर्म के बन्धन से भी तू क्यों भयभीत होता है ?चूँकि 'नरे' नर में 'कर्म न लिप्यते' कर्म लिप्त नहीं होता। नर मनुष्य कर्म के लेप से ऊपर है। 'नर' वह है जो 'न रमते' इन कर्मों में उलझ नहीं जाता। न रम जाना-न फँस जाना ही नर का धर्म है। वि-रत होकर कर्त्तव्य को करते जाना ही मार्ग है। इस से चलने वाला लिप्त नहीं होता। उदाहरणार्थ सन्तान को भी प्रभु व राष्ट्र की समझ पालते जाना ही नर बनना है! ऐसा मनुष्य न ममत्व करता है- न दुःखी होता है। यही अनासक्ति से कर्म करना है। 'विरति' वैराग्य बन्धन से बचाता है। मैं कर्म को न चिपटूँ तो कर्म भी मुझे क्यों चिपटेगा? 'अनाश्रितः कर्मफलं' इस गीता वाक्य के अनुसार हम कर्मफल का आश्रय छोड़ कर कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करेंगे तो बन्धन न होगा।

एवं हमें इस संसार में नर बनकर अनासक्ति पूर्वक कर्म करते चलना है और अवश्य सौ वर्ष तक जीना है। ''मैं पापी हो जाऊंगा-कर्म मुझे बाँध लेंगे'' इस अज्ञान को नष्ट करके यह व्यक्ति 'दीर्घतमा' बना है। सदा अपने लक्ष्य को आँख से ओझल न करने के कारण यह 'दध्यङ्' है। फलासक्ति न रहने से यह डाँवाडोल नहीं होता सो 'आथर्वण' (न थर्वति-डाँवाडोल नहीं होता) हो गया है।

'नर' बनने के लिये यह विचार बड़ा सहायक होता है कि ' एकः प्रजायते जन्तुः एक एव विलीयते' (मनु) अकेला ही प्राणी आता है और अकेला ही जाता है। वृक्ष की छाया में यात्री इकट्ठे होते हैं और थोड़ा विश्राम करके चल देते हैं। बस इसी प्रकार हम परिवार में इकट्ठे होते हैं और कुछ देर में अलग-अलग होने लग जाते हैं। सो 'मेरा' या ममत्व का यहाँ प्रश्न ही नहीं।

भावार्थ - हम प्रभु के इन दो आदेशों को सदा स्मरण रखें कि 'सदा कर्मशील रहो और सौ वर्ष जीने की कामना करो'।

(सामार - वैदिकपथ)

हाजिर जवाबी

वैदिक विद्वान पं० रामचन्द्र देहलवी बड़े ही प्रत्युत्पन्न मति (हाजिर जवाब) थे। शास्त्रार्थ महारथी थे, उनसे किसी भी विषय पर बात करो वे एकदम अपनी प्रत्युत्पन्न मति की छाप सामने वाले पर लगा ही देते थे। उनके जीवन की एक प्रसिद्ध घटना है। पण्डित जी से शास्त्रार्थ करने के लिए एक मौलाना आया। शास्त्रार्थ में जब पण्डित जी की बारी आयी तो उन्होंने मौलाना से पूछा-मौलाना साहब ! आज कौन सा दिन है?

बड़ी सहजता से मौलाना बोले- आज जुमेरात है। इस पर पण्डित जी बोले-मौलाना मैं आपसे दिन पूँछ रहा हूँ और आप रात बता रहे हैं।

इससे उपस्थित श्रोता खिलखिला कर हँसने लगे। इस्लामी चिन्तन व ज्ञान विज्ञान की एक ही प्रश्न से पण्डित जी ने शव परीक्षा करके दिखा दी। जो पाठक न जानते हों उन्हें बता दूँ कि मुसलमान अरबी संस्कृति में गुरुवार को जुमेरात कहते हैं।

आधुनिक मानव पर विज्ञान का प्रभाव

-स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

वैज्ञानिक परिव्राजक डॉ० स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के देश-विदेश में अंग्रेजी भाषा में दिये गये सैकड़ों व्याख्यानों में से छः व्याख्यानों का हिन्दी अनुवाद (अनुवादक-डॉ० सुनीलदत्त तिवारी) 'आर्ष विज्ञान' (पृ० ६५) शीर्षक से विज्ञान परिषद् प्रयाग ने जनवरी १६६६ ई० में प्रकाशित किया है। प्रस्तुत लेख स्वामीजी द्वारा ६ सितम्बर, १६७१ ई० को सामाजिक केन्द्रीय सभागार, किसुमु (केन्या) में 'आधुनिक मानव पर विज्ञान का प्रभाव' विषय पर अंग्रेजी भाषा में दिये गये व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद है। यह निबन्ध २० पृष्ठों का है, जिसका यह स्वल्पांश 'वैदिक पथ' से साभार संग्रह किया गया है। सम्पादक।

विज्ञान शब्द का अर्थ है ज्ञान या ज्ञान जो सिमट कर एक पद्धति बन गया हो। पुरानी शब्दावली में सात लौकिक विज्ञान थे- व्याकरण, अलंकार, तर्क, संगीत, ज्योतिष, रेखागणित और अंकगणित और सात दैवी विज्ञानों के अन्तर्गत नागरिक कानून, ईसाई कानून, व्यवहारिक अध्यात्म, भक्तिमय अध्यात्म, कट्टरवादी अध्यात्म, रहस्यमय अध्यात्म और शास्त्रार्थी अध्यात्म। यूरोप में लोगों का यह विश्वास था कि पुराने लोग (या तो यूनानी दार्शनिक अथवा ओल्ड टेस्टामेण्ट के लेखक) ही सारे ज्ञान से परिचित थे। वे अपनी सन्ततियों को इन लिखित बातों का पालन करने के लिए कहते थे या पुरानों द्वारा कही गयी उन बातों की व्याख्या की जाती थी जो असंदिग्ध थीं। ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयों की स्थापना दैवी शब्दों की व्याख्या करने और दैवी उपदेशों (इञ्जिल) का प्रसार करने के लिए की गयी। इस प्रकार प्रारम्भ में सारे यूरोप में विश्वविद्यालय कट्टर विचारधाराओं के केन्द्र थे तथा उनका उद्देश्य केवल अध्यात्म की शिक्षा देना था। नये युग या 'विज्ञान युग' के आने के बाद ही सार्थक विज्ञानों को मान्यता दी गई जिससे कैम्ब्रिज और ऑक्सफोर्ड ज्ञान के हर क्षेत्र में आगे हैं। विज्ञान सभी प्रकार की रूढ़ियों, पूर्वाग्रहों तथा अपंगताओं से लड़ने के लिए है। यूरोप में इसे अध्यात्म के नाम पर फैले अन्धविश्वास और कट्टरता के विरूद्ध लड़ना पड़ा। आप जानते ही हैं कि अन्धविश्वास कठिनाई से समाप्त होते हैं तथा प्रकृति में छिपे सत्यों को उद्घाटित करने के लिए विज्ञान को अस्त्र के रूप में स्वीकार करने में काफी समय लग गया। कई बार विज्ञान की धर्म से भिड़न्त हुई। वैज्ञानिकों को कई बार नास्तिक करार दिया गया। उदाहरणार्थ, जब पृथ्वी को गेंद की तरह माना गया (न कि चपटे पिण्ड के रूप में), जब पृथ्वी को सूर्य के चारों ओर घूमता बताया गया (न कि सूर्य को पृथ्वी का चक्कर लगाने में), जब औरतों को पुरुषों के बराबर स्वतन्त्रता देने की बात की गयी (न कि आदम से ली गयी पसली से उत्पन्न) तथा जब प्रसव के समय महिलाओं को होने वाले दर्द से छुटकारा देने के लिए संवेदनाशून्य करने वाली दवाओं की खोज की गयी (उस आदेश के विरूद्ध कि महिला को प्रसव पीड़ा झेलनी होगी)। इसका चरम बिन्दु तो तब पहुँचा जब जातियों की उत्पत्ति से सम्बन्धित उद्विकास का सिद्धान्त प्रस्तुत किया गया।

विज्ञान को अन्धविश्वासों तथा पुराणपंथी से लड़ना था। सभ्य या असभ्य हर प्रकार के देश के लोगों में कुछ-न-कुछ अन्धविश्वास होते हैं। हर युग का अपना अन्धविश्वास है। ये अन्धविश्वास किसी देश की जीवन्तता को नीचे लाने वाले हैं। ये बड़ी कठिनाई से मरते हैं तथा एक पीढ़ी से दूसरी में स्थानान्तरित होते हैं। ये उन गलत परिणामों पर आधारित होते हैं जिनके वास्तविक कारण की खोज न

की गयी हो। एक अन्धविश्वासी दिमाग चतुर और स्वार्थी लोगों द्वारा किये गये शोषण के प्रति सहनशील होता है। मैं कुछ अन्धविश्वासों के बारे में बताऊँगा जो हमारे समाज में परम्पराओं द्वारा चले आ रहे हैं। ये हैं- जादू और टोना, ज्योतिष, हस्तरेखा विज्ञान, अंक विज्ञान, अच्छे और बुरे शकुन आदि। ये हमारे आधुनिक समाज के लिए अभिशाप हैं। इनमें से बहुत से अन्धविश्वास हमारे अज्ञान और भविष्य की आशंका के कारण होते हैं। हमारे भविष्य को निश्चित करने वाले अनेक कारक तथा प्राचल हैं जिनकी गणितीय भविष्यवाणी असम्भव है और इन परिस्थितियों में सहज या भोले-भाले अन्धविश्वासी स्वभाव वाले व्यक्ति का शोषण होता है।

अनेक अन्धविश्वास प्राकृतिक सिद्धान्तों के न जानने से उत्पन्न होते हैं। आदिमानव के पास चन्द्रमा की कलाओं, चन्द्र और सूर्यग्रहण, धूमकेतुओं के प्रकट होने, उल्का खण्डों की वर्षा होने, यहाँ तक की सूर्य और चन्द्रमा के निकलने और डूबने तथा मौसम में परिवर्तन आदि के बारे में कोई व्याख्या नहीं थी। इसलिए उसने इन सबके साथ कुछ विश्वसनीयता जोड़ दी। विज्ञान के उदय होने के साथ इन विश्वसनीयताओं को विलुप्त हो जाना चाहिए। स्वार्थी धर्मपन्थी लोग जनता के अज्ञान पर ही पल्लवित होते हैं। मैं किसी विशेष चर्च, सम्प्रदाय या समुदाय के बारे में बातें नहीं कर रहा हूँ। जैसे कोई अन्धा अन्धों का नेतृत्व करे, वैसे ही इस वर्ग के उपदेशकों, या गुरुओं ने लम्बे समय से अपने अनुयायियों का शोषण किया है। विज्ञान के पास उनको देने के लिए सन्देश है। यह सन्देश है तार्किकता का। निश्चित रूप से हममें से किसी के पास पूर्ण ज्ञान नहीं है किन्तु मनुष्य को खोजबीन करने की शक्ति मिली है।

विज्ञान कतिपय स्वयं सिद्ध कल्पनाओं पर आधारित है। हम जिस संसार में रह रहे हैं वह घटनाओं की राशि है जो अपने सही स्थान पर हैं और यह सार्वभौम मूलभूत नियम कार्य-कारण सम्बन्ध से जुड़ा हुआ है। यह संसार संयोगवश नहीं बन गया। इसकी एक पूर्ण संरचना है तथा यह योजना-आधारित है। संसार अचर (स्थैतिक) नहीं है, यह गतिशील है। इसकी स्थिरता स्थैतिक सन्तुलन में नहीं है, यह गतिशील सन्तुलन को पुष्ट करता है। संसार निरुद्देश्य भी नहीं है, इसकी हर धड़कन एक दैवी और परोपकारी उद्देश्य से प्रेरित है। यह जगत् सतत परिवर्तनशील है और यह परिवर्तनशीलता इसकी वास्तविकता है। थोड़ा-सा विनाश पड़ोस में ही सृजन को लाता है। इस तरह विनाश निर्माण की तरह ही उदार है। मृत्यु और क्षय से जन्म और वृद्धि होती है और यह चक्र चलता रहता है। संसार पूर्ण मितव्ययिता के नियम पर आधारित है, इसका एक ग्राम भी फिजूल नहीं जाता है और इस प्रकार प्रकृति में कार्बन, नाइट्रोजन और फास्फोरस के चक्र चलते रहते हैं। इन चक्रों के नियम से तथा मितव्ययिता के नियम के अन्तर्गत यदि एक स्थान पर ऊर्जा का विनाश होता है तो दूसरे स्थान में समान भार की ऊर्जा प्रकट होती है। यहाँ पर थोड़ा-सा लाभ वहाँ थोड़ी-सी हानि उत्पन्न करता है। इन चक्रों के नियम तथा मितव्ययिता ने हमें संरक्षण के तीन आधारभूत नियम प्रदान किये हैं- द्रव्यमान का संरक्षण ऊर्जा का संरक्षण तथा संवेग का संरक्षण। पूर्ण मितव्ययिता पदार्थ की अविनाशिता का प्रतिफल है (यहाँ पदार्थ किसी पदार्थ विशेष के लिए नहीं बल्कि व्यापक रूप में है)। पुनः हमारी वैज्ञानिक खोजें इस स्पष्ट भाव पर आधारित हैं कि मनुष्य को प्रकृति के रहस्यों की खोज निकालने की क्षमता मिली है। वह जितना ही इन रहस्यों की खोज करेगा उतना ही पावेगा कि अनखोजा भाग अधिक है। इस तरह हमारी वैज्ञानिक खोज का अन्त नहीं है। विद्या की देवी (सरस्वती) उन्हीं के समक्ष प्रकट होती है जो प्रेम, आदर तथा श्रद्धा के साथ उसका वरण करते हैं। वह अपना सौन्दर्य क्रमशः अपने वरणकर्ता के समक्ष उद्घाटित करती है। वह चिर, नवीन, मोहक है, उसकी सुन्दरता हमेशा अनुप्राणित करती है। यह

सुन्दरता न नष्ट होती है, न मुरझाती है, न ही मरती है। विज्ञान-बाला का ऐसा है यौवन और ऐसी है विद्या की देवी (सरस्वती)।

मैं यह पूर्ण दावे के साथ कह सकता हूँ कि जो बात आपको सन्तुष्ट नहीं कर सके, यदि आप उस पर विश्वास करते हैं तो इसका अर्थ है कि आपने तर्क करने के सर्वोपरि गुण का परित्याग कर दिया है, जो मनुष्य को प्रदान की गई एकमात्र मशाल है। वैज्ञानिक जन-नास्तिक नहीं होते। वैज्ञानिक आस्तिकता शाश्वत नियम की इस दैवी सार्वभौमिकता को अंगीकार करना है तथा इसके प्रति आदर-भाव रखना है।

यदि एक रसायनज्ञ या भौतिकीविद् के रूप में मैं यह नहीं समझता कि इलाहाबाद विश्वविद्यालय में किये गये प्रयोग काम्पाला, नैरोबी, लन्दन या न्यूयार्क में कोई अर्थ नहीं रखते हैं तो मैं प्रोफेसर पद स्वीकार नहीं करता। मेरे प्रयोग तभी अर्थ रखते हैं जब वे सच हों (पुनः करने योग्य भी) तथा मास्को, पिकिंग या टोक्यो की प्रयोगशालाओं में भी प्रमाणित हों। प्रयोग के पुनः करने हेतु कोई समय का बन्धन भी नहीं है। यदि प्रयोग और परिणाम हर वर्ष, दस-दस वर्ष में, सौ-सौ वर्षों में परिवर्तित होते रहें तो यह विज्ञान नहीं है। मेरे प्रेक्षण गलत हो सकते हैं, उनसे प्राप्त मेरे निष्कर्ष अतार्किक और गलत हो सकते हैं, मेरी प्रायोगिक तकनीक में अशुद्धि हो सकती है, हमारे तर्क दोषयुक्त तथा अनिष्कर्षणीय हो सकते हैं, लेकिन एक वैज्ञानिक की आस्था अपनी इस मान्यता में निहित होती है कि प्रकृति सभी कालों और देशों के लिए एक-सी है। समान पर्यावरण और परिस्थिति में प्रकृति समान कार्य करती है। प्रकृति में कोई बदलाव नहीं है, वह हमीं हैं जो अपने ज्ञान और समक्ष में अपूर्ण हैं। वैज्ञानिक की यही प्रवृत्ति उसे विज्ञान को समर्पण और स्वार्थरहित भावना से आगे बढ़ाने के योग्य बनाती है।

प्राकृतिक संसाधनों पर दबाव

पृथ्वी पर, पृथ्वी के भीतर तथा हमारे चारों ओर उपस्थित प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं। कृषि चक्र तो हर वर्ष, हर दूसरे या तीसरे वर्ष (कभी-कभी छमाही), औद्योगिक चक्र ५ से १० वर्ष में तथा वन चक्र २० से ५० वर्ष में पूरे होते हैं। लेकिन भूगर्भीय चक्र केवल एक बार किसी भूगर्भीय युग में ही पूरा होता है तथा इस धरती पर मानव जीवन काल में दुबारा नहीं लौटेगा। इस प्रकार के उत्पादों को जो भूगर्भीय युगों में ही उत्पन्न होते हैं मनुष्य बहुत तीव्र गति से समाप्त कर रहा है। कोयला, पेट्रोलियम, धातुएँ और खनिज इस श्रेणी के उदाहरण हो सकते हैं। यद्यपि इनको प्रतिस्थापित करने हेतु संश्लेषित उत्पाद बनाने के प्रयास हो रहे हैं पर इस दिशा में सावधानी जरूरी है। मनुष्य को इस समय और अधिक ऊर्जा और अधिक भोजन की आवश्यकता है तथा एक या दो शताब्दियों के बाद वह भयावह आपदाओं का सामना करने जा रहा है। हमारी भावी पीढ़ी को जिस समस्या का शीघ्र ही सामना करना है वह स्पष्ट है किन्तु है गम्भीर। यह सब पिछले सौ वर्षों की वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति की देन है। अब हम ईंधन तथा ऊर्जा के लिए परमाणु स्त्रोतों की खोज में हैं। परन्तु जैसा कि लगता है समस्या उतनी आसान नहीं है। उसकी अपनी जटिलताएँ हैं। यह भी जानना कठिन है कि परमाणवीय या सौर ऊर्जा का उपयोग करने पर हम किस प्रकार की आपदाओं में जा गिरेंगे।

विज्ञान और धर्म

यद्यपि मैं अपने पूरे जीवन में विज्ञान का विद्यार्थी रहा, परन्तु फिर भी संसार के धार्मिक जीवन में

गहरी रुचि लेता रहा हूँ। पूरे मिशन में आज मेरा यह नारा है- धर्म को व्यापक बनाओ और अपने विज्ञान का अध्यात्मीकरण करो। कुछ शताब्दियों पूर्व तक संसार में धर्म के दूतों का प्राधान्य था, आज वैज्ञानिकों के अधीन है। व्यक्तिगत धर्म से मठों, गिरजाघरों, कान्वेण्टों तथा बड़े-बड़े संघटनों का जन्म हुआ है और आज लघुस्तरीय विज्ञान दैत्याकार प्रौद्योगिकी में विकसित हो चुका है। इन दोनों के उद्देश्य समान थे- सामान्य मानव के कल्याण को देखना, प्रत्येक तरीके से उसके जीवन-स्तर को उठाना तथा उसकी छिपी हुई शक्ति को प्रकट करना-जिससे वह अपना पूर्णतम आकार प्राप्त कर सके। लेकिन विज्ञान और गिरजाघर दोनों असफल हो गये हैं। पहले ने अर्थात् अन्धविश्वासी धार्मिकता ने विश्वसनीयता तथा मानव मन की दुर्बलताओं का शोषण किया, अन्धविश्वासों और रूढ़ियों को जन्म दिया, जीवन को स्थिर और संकुचित बना दिया, इसने मृत्यु के बाद स्वर्ग का वादा किया किन्तु उल्टे इसने वर्तमान जीवन को नारकीय बना दिया। दूसरे ने अर्थात् विज्ञान और तकनीकी ने भी आर्थिक क्रान्तियों, अस्वास्थ्यकर प्रतियोगिताओं, असन्तोष तथा आदर्शों के दिवालियापन को जन्म दिया।

एक संतुलित वैज्ञानिक ऐसा वैज्ञानिक बन गया है, जो इन सभी बातों को नकार देता है, मानो कि वे अनुचित और अवैज्ञानिक हैं। वैज्ञानिकों और अध्यात्मविदों के अतिरिक्त हमारे पास नास्तिक लोग भी हैं जो यह कहते हैं कि विज्ञान प्रत्येक वस्तु की व्याख्या नहीं और वह यह नहीं मानता कि धर्म का भी कोई मूल्य है। फिर हमारे पास भावनावादियों का समूह है, जो अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर बल देता है और यह आशा करता है कि दूसरे भी उनकी संवेदना को सवीकारें। नैतिकता के पक्षधर भी समाज में चारित्रिक स्तर को ऊँचा नहीं उठा पाये। मनुष्य और अधिक झूठा, अधिक बैईमान, अधिक स्वार्थी और अधिक अविश्वसनीय हो गया है जो न केवल व्यक्तिगत स्तर पर है अपितु सामूहिक रूप में समाज के सदस्य रूप में या राष्ट्रीय महत्ता के कार्यो में प्रतिभागी के रूप में है। विज्ञान तथा धर्म के बीच का यह विवाद अब समाप्त होना चाहिये।

हमें कुछ गलतियों से बचना है। हमें धार्मिक मंचों से विज्ञान का मजाक नहीं उड़ाना चाहिए। हमें अध्यात्म या धर्म के नाम पर वैज्ञानिक तथ्यों को तोड़ना-मरोड़ना नहीं चाहिए और फिर हमें दृढ़ता से दो बातों को स्वीकार करना चाहिए। पहली यह कि विज्ञान और अध्यात्मविद्या (मेटाफिजिक्स) वास्तविकता तक पहुँचने के भिन्न-भिन्न किन्तु स्पष्ट मार्ग हैं। विज्ञान धर्म या अध्यात्मविद्या के क्षेत्र में कोई प्रमाण नहीं दे सकता। दूसरी यह कि विज्ञान एवं अध्यात्मविज्ञान धीरे-धीरे एक दूसरे के निकट आ जाएँगे क्योंकि वास्तविकता (सच्चाई) तो एक है। यदि धर्म को अन्धविश्वासों और रूढ़ियों से स्वतंत्र कर दिया जाय एवं उसे व्यवस्थित कर दिया जाय और विज्ञान के इस अन्तहीन एवं उद्देश्यहीन ज्ञान को व्यवस्थित कर दिया जाय ताकि वह विस्तृत रूप से जीवन के उच्च मूल्यों को स्वीकार कर सके एवं इसे धर्म से जोड़ दिया जाय तो हमारे लिए एक ऐसा धरातल तैयार होगा जहाँ भौतिकता एवं धार्मिकता के बीच कलह नहीं होगी और यह संसार जिसमें हम रह रहे हैं स्वर्ग बन जायेगा। इस उद्देश्य के लिए विज्ञान और धर्म को एक भाषा स्वीकार करनी होगी और मिलजुल कर काम करना होगा। विज्ञान के कारण आधुनिक युवा वर्ग हताश हो गया है। जीवन उसके लिए अर्थपूर्ण नहीं रह गया। जीवन का जैविक एवं आर्थिक प्रदर्शन उसे कोई सन्तुष्टि नहीं देता और वह इतना दिग्भ्रमित है कि अपने जीवन को अर्थपूर्ण नहीं बना पाता।

अध्यात्मीकृत विज्ञान शायद हमारी समस्याओं का कोई हल प्रस्तुत कर सकें।

●●●

निराकार ईश्वर की उपासना

-प्रताप कुमार 'साधक', लखनऊ

ईश्वर की उपासना के लिए प्रायः हिन्दू पूजा शब्द का प्रयोग करते हैं, जबकि मुस्लिम इबादत और ईसाई प्रेयर कहते हैं। वस्तुतः पूजा तो किसी व्यक्ति की भी की जाती है। महर्षि दयानन्द सरस्वती आर्योद्देश्य रत्नमाला में लिखते हैं-

''जो ज्ञानादि गुण वाले का यथायोग्य सत्कार करना है, उसको पूजा कहते हैं।'' वहीं उपासना की परिभाषा की है- ''जिसे करके ईश्वर ही के आनन्द स्वरूप में अपने आत्मा को मग्न करना होता है, उसको उपासना कहते हैं। उपासना = उप + आसना, समीपस्थ होना। वैसे ईश्वर तो सदा सबके समीप ही है, क्योंकि वह सर्वव्यापक और सर्वान्तर्यामी है किन्तु हम ऐसा अनुभव नहीं करते। अतएव ऐसा अनुभव करना ही उपासना का मुख्य प्रयोजन है।

अब विचारणीय यह है कि हम जिसके समीप होना चाहते है, जिसकी खोज करना चाहते हैं, प्रथम उसके स्वरूप , गुण, कर्म और स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना अपरिहार्य है। इसके लिए पहले ईश्वर की स्तुति और प्रार्थना आवश्यक है। स्तुति का अर्थ स्तुत्य के गुणों का ज्ञान और उनका श्रवण तथा कथन (जप) है, जबकि अपने पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अधिक सामर्थ्य वाले से सहायता मांगना वा प्राप्त करना प्रार्थना कहलाती है। महर्षि 'सत्यार्थ प्रकाश' के सप्तम् समुल्लास में लिखते हैं- ''स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना, प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहाय का मिलना, उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना।''

उपरोक्त आप्त वचन आध्यात्मिक उन्नति के लिए हमें तीन सोपान प्रदान करता है- स्तुति, प्रार्थना और उपासना। ईश्वर के गुण दो प्रकार के हैं - एक वे जिन्हें अपनाकर हम दोष रहित, पवित्र और महान बन कर ईश्वर की कृपा के पात्र बन सकते हैं, जैसे- दयालुता, दान, परोपकार, न्यायप्रियता, निष्काम सेवा आदि। दूसरे वे अलौकिक गुण, जिन्हें मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता है, जैसे-सृष्टि रचना, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता आदि। इन विशिष्ट गुणों का चिन्तन करते हुए ईश्वर के प्रति अनुपम प्रीति करें, उसके समान या उससे अधिक प्रेमी-प्रेमिका, पति-पत्नी, पुत्र, धन, सम्पत्ति, पद, यश आदि किसी को भी महत्व न दें। उसी को प्रियतम समझें। उपरोक्त प्रकार ईश्वर की स्तुति करने से व्यक्ति सुयोग्य ईश्वर-भक्त बन जाता है।

ऐसा साधक ईश्वर से सद्गुणों, सद्-विचारों, सत्कर्मों के लिए प्रार्थना करेगा, तो उसमें गुणी, ज्ञानी, कर्मठ होने का अहंकार उत्पन्न नहीं होगा। पुनरपि-परमसाध्य परमेश्वर की प्राप्ति हेतु उचित साधन और आन्तरिक प्रेरणाएं भी ईश्वर स्वयं प्रदान करेगा। इससे साधक उत्साहित होकर साधना पथ पर आगे बढ़ता ही चला जाता है। यहां दो बातें स्पष्ट रूप से हृदयंगम कर लेना चाहिये- पहली यह कि प्रार्थना प्राकृतिक नियम तथा वेद-विरूद्ध अथवा दूसरे को हानि-कष्ट पहुँचाने वाली न होनी चाहिये, जैसे-हे ईश्वर! मेरी मृत्यु न हो, मेरे शत्रु का नाश हो, मैं चोरी, हत्या, व्यभिचार करता हुआ भी कभी

पकड़ा न जाऊँ, मैं जिस भी पदार्थ का स्पर्श करूं, वह स्वर्ण बन जाए आदि-आदि......। ईश्वर ऐसी प्रार्थनाएँ स्वीकार नहीं करता है। दूसरी यह कि प्रार्थना के साथ उसी के अनुरूप पुरुषार्थ भी करना चाहिये, तभी प्रार्थना सफल होती है, जैसे-विद्यार्थी बिना पढ़े, परीक्षा में उत्तीर्ण होना चाहे, कृषक बिना खेत जोते, बोए सींचे अच्छी फसल की प्रार्थना करे, योगसाधक बिना तपस्या किए ईश- साक्षात्कार की कामना करे, तो ऐसा सम्भव नहीं होता। अतः ईश-प्राप्ति के लिए विवेक के साथ निरन्तर, दीर्घकाल तक योगाभ्यास करने के साथ ईश्वर से प्रार्थना करने पर वह अपना स्वरूप स्वयं प्रकट कर देता है। यही उपासना हैं।

ईशोपासना करने के लिए सर्वप्रथम ईश्वर के स्वरूप को ठीक-ठीक सन्देह रहित होकर समझ लेना चाहिये, क्योंकि किसी के बारे में कुछ जाने बिना या उल्टा ज्ञान रखने पर तो सामान्य व्यक्तिसे मिलना भी सम्भव नहीं होता। वेद शास्त्रों में ईश्वर के स्वरूप और गुण, कर्म, स्वभाव को बतलाने वाले अनेकों मंत्र और सूत्र हैं। यहां प्रमाण स्वरूप केवल एक-एक का उल्लेख करते हैं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरँ् शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्योऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।। (यजुर्वेद ४०-८)

अर्थः- वह ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। सृष्टि को उत्पन्न करने वाला, निराकार, घाव आदि शारीरिक कष्टों से रहित, नस-नाड़ियों के जाल से रहित, पवित्र, दोष-पाप से शून्य , ज्ञानी, सभी पदार्थों को देखने वाला, मन के भीतर की बातों को भी जानने वाला सब पर आच्छादित, सबसे बड़ा, बिना किसी के बनाए स्वयं सदा उपस्थित है। उसने प्रजा (जीवों) के कल्याण और शान्ति के लिए पदार्थों का ठीक-ठीक ज्ञान (वेदों के माध्यम से) प्रदान किया है।

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।

- (योगदर्शन १-२४)

अर्थ :- सारी सृष्टि में व्याप्त पुरुषविशेष ईश्वर क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, मृत्युभय), सांसारिक कर्म, कर्मफल और कर्मों के संस्कारों, वासनाओं से अछूता है।

ऊपर जितने भी गुण बतलाए गए हैं, वे सभी निराकार, निर्विकार सत्ता में ही रह सकते हैं, शरीरधारी मनुष्य में नहीं। शरीरधारी मनुष्य या अन्य कोई भी पशु-पक्षी शरीर और आत्मा का समुच्चय होता है। वह निर्मित होने से विनाशी अनित्य होता है,एक देशी, अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान रहता है। कर्म करके सुखी और दुखी भी होता है। किन्तु ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप है, वह एक क्षण के लिए भी अपने स्वाभविक गुण आनन्द से रहित नहीं होता। मनुष्य का आत्मा सत् और चित् (चेतन) होते हुए भी आनन्द से रहित होता है, अतः आनन्द की प्राप्ति के लिए आनन्द-स्त्रोत परमात्मा की उपासना करता है। शरीर के अवयव तो ज्ञानेन्द्रियों से देखे और अनुभव किए जा सकते है, किन्तु आनन्द का अनुभव इन्द्रियों से कर पाना सम्भव नहीं है।यह सीधे आत्मा का विषय है। बाह्य भौतिक पदार्थों का ज्ञान हमें ज्ञानेन्द्रियों तथा मन के माध्यम से होता है और उनसे सुख-दुःख की अनुभूति भी होती है। जैसे-सुन्दर दृश्य या चित्र आँखों से देखकर सुख और कारूणिक या वीभत्स दृश्य या चित्र देखने पर दुःख होता है। इसी प्रकार

मधुर संगीत या कर्कशध्वनि कानों से सुनकर तदनुसार मन पर प्रभाव पड़ता है। नाक से सुगन्ध या दुर्गन्ध का पता चलता है, जिह्वा से स्वादिष्ट या अरूचिकर खाद्य-पेय पदार्थो का मान होता है, और त्वचा से सुखद या दुःखद स्पर्श की अनुभूति होती है। किन्तु भौतिक साकार पदार्थो या प्राणियों से प्राप्त सुख क्षणिक होता है, और वह भी दुःख-मिश्रित होता है। कभी मन शान्त न हो, तो सुखद वस्तुएँ भी दुःखदायी लगती हैं। किन्तु अभौतिक ईश्वर का आनन्द सदैव एक रस रहता है, जिसे अभौतिक आत्मा सीधे प्राप्त करता है। इसके लिए उसे ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता नहीं होती। यजुर्वेद (४०-५) में बतलाया गया है -

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।

अर्थात्- ईश्वर सारी सृष्टि को चला रहा है, किन्तु सर्वव्याप्त होने से स्वयं गतिमान नहीं है। वह छोटे से छोटे पदार्थ के भीतर भी है, और बड़े से बड़े पदार्थ के बाहर भी। अतः ईश्वर आत्मा के भीतर भी है, जहां और कोई पदार्थ नहीं रह सकता।

शास्त्रों में स्पष्ट किया गया है कि मन एक समय में एक ही विषय से सम्बद्ध हो सकता है- ''युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्। (न्याय. १-१-१६) अतएव मन को ज्ञानेन्द्रियों से असम्बद्ध करके ही आत्मा में विलय करने पर ईश्वर के आनन्द को अनुभूत किया जा सकता है। जब हम किसी मूर्ति या चित्र को देखकर उस पर ध्यान लगाते हैं, तो आँख ज्ञानेन्द्रिय द्वारा उस जड़ पदार्थ की आकृति तथा रंग आदि का विचार ही मन में आता है- वह भी अलग-अलग अंगों तथा वस्त्रादि का। निश्चय ही उस जड़ में आनन्द नहीं होता, अतः आत्मा को कुछ भी प्राप्त नहीं होता। किन्तु जब हम ईश्वर के किसी दिव्य गुण का ध्यान लगातार करते हैं, उस पर विचार करते हैं, तो उस समय ज्ञानेन्द्रियों का कोई व्यापार नहीं होता। केवल मन और बुद्धि ही सक्रिय रहती है। सांसारिक विषयों के अभाव होने की दशा को ही ध्यान कहा गया है। ध्यान की प्रगाढ़ावस्था में जब यह भान न रहे कि मैं ध्यान कर रहा हूँ, केवल ईश्वर में स्वरूप का ही भान होता रहे, तब वह समाधि होती है।

वेदाधारित छः दर्शन ग्रन्थों में से महर्षि पतञ्जलि-प्रणीत ''योग दर्शन'' में ईश्वर की उपासना का सरल व शुद्ध रूप बतलाया गया है। इसे ही राजयोग तथा अष्टांग योग भी कहते हैं। योग के फल समाधि को प्राप्त करने के लिए इसके अन्य प्रारम्भिक सात अंगों - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान में प्रवीणता प्राप्त करनी आवश्यक है। बिना इन्हें सिद्ध किए कोई सीधे समाधि अवस्था को प्राप्त नहीं कर सकता। महर्षि दयानन्द सरस्वती ''ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका'' के ''उपासना-विषयः'' में लिखते हैं- ''जब जब मनुष्य लोग ईश्वर की उपासना करना चाहें, तब तब इच्छा के अनुकूल एकान्त स्थान में बैठकर, अपने मन को शुद्ध और आत्मा को स्थिर करें, तथा सब इन्द्रियों और मन को सच्चिदानन्दादि लक्षण वाले अन्तर्यामी अर्थात् सब में व्यापक और न्यायकारी परमात्मा की ओर अच्छी प्रकार से लगाकर, सम्यक् चिन्तन करके, उसमें अपने आत्मा को नियुक्त करें। फिर उसी की स्तुति, प्रार्थना और उपासना को बारंबार करके, अपने आत्मा को भलीभांति से उस में लगा दें।'' तात्पर्य यही है कि चित्त (मन) की वृत्ति को बाहर से रोककर ईश्वर के गुण के चिन्तन में लगा देना चाहिये।

उपरोक्त वर्णित उपासना योग अति कठिन अवश्य है, किन्तु यह भी सत्य है कि इसी के द्वारा

जन्म-मरण के बन्धन और समस्त दुःखों से अत्यन्त निवृत्ति होकर मोक्ष का आनन्द प्राप्त हो सकता है। मृत्युञ्जय बनने का यही एकमात्र उपाय है। विशेषता यह है कि मोक्ष कई जन्मों में की जाने वाली साधना के पश्चात् ही प्राप्त होता है।

अतः एक जन्म में की गई साधना व्यर्थ नहीं जाती, अपितु वह अगले जन्म में की जाने वाली साधना का आधार बनती है। अतः आज और अभी से योग मार्ग पर चलना प्रारम्भ कर दें - तभी मनुष्य - जन्म पाना सार्थक होगा।

नई पीढ़ी में वैदिक विचार धारा ?

ईश्वर कृपयात्र कुशलं तत्रापि भवतु।

आर्य प्रतिनिधि सभा अमेरिका के २६वें वार्षिक सम्मेलन में भाग लेने ११ जुलाई को न्युयार्क पहुंचा। इस बार मेरे ORLANDO के साथ-साथ CALIFORNIA, ATLANTA, NEW JERSEY, SAN FRANCISCO आदि अनेक नगरों में योग-शिविर, अध्यापन, प्रवचन, ध्यान, यज्ञ शंका समाधान के कार्यक्रम बने हैं। १ मास यहां प्रचार करने के बाद TORONTO - CANADA भी एक सप्ताह के लिए व्याख्यान देने हेतु जाऊँगा। यह मेरी २४वीं विदेश प्रचार यात्रा है।

इस बार सम्मेलन का विषय था "REJUVENATING ARYA - SAMAJ VALUES IN YOUNGER GENERATION" अर्थात् नई पीढ़ी में आर्य समाज की विचारधारा को कैसे पहुँचाया जाये ?आर्य समाजों में नई पीढ़ी का न आना या कम आना, एक चिन्ता का विषय बन गया है। ऋषि दयानन्द जी द्वारा संस्थापित समाज का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया, सर्वत्र निराशा-आशंका की मानसिकता बनती जा रही है। सम्मेलन में अनेक प्रबुद्ध विद्वानों ने इस समस्या के कारण तथा निवारण के उपायों पर अपने विचार अभिव्यक्त किये।

नई पीढ़ी का आर्य समाज में न आने का मुख्य कारण माता-पिता ही हैं। वैदिक शिक्षा प्रणाली में बच्चों को अध्ययन काल में घर में रखने का विधान ही नहीं है। यदि किन्हीं कारणों से माता-पिता बच्चों को गुरुकुल में नहीं भेजते हैं, घर में ही रखते हैं तो उनका कर्त्तव्य बन जाता है कि वे घर को गुरुकुल का रूप दें, गुरू के दायित्वों को भी निभावें। बच्चों को प्रातः जागरण भ्रमण, व्यायाम, स्नान, ध्यान, प्राणायाम, जप, स्वाध्याय, यज्ञ आदि नैत्यिक कर्मो को श्रद्धा व निष्ठापूर्वक करने हेतु प्रेरणा-प्रोत्साहन प्रदान करें और न करने पर ताड़ना, भत्स्र्ना, दण्ड भी दें। पुरुषार्थ, तपस्या, त्याग, सेवा, विनम्रता, संयम, शिष्टाचार, समाज-राष्ट्र-ईश्वर-भक्ति के आदर्श उत्तम संस्कार बाल्यावस्था में ही बनाये जा सकते हैं, बाद में बड़े होने पर नहीं। माता-पिता राग-मोह भय आदि कारणों से बच्चों को धार्मिक आध्यात्मिक बनाने के अपने कर्त्तव्य से विमुख हो रहे हैं। नई पीढ़ी के नास्तिक स्वच्छन्द- अशिष्ट-असभ्य बनने में वे ही सर्वाधिक दोषी हैं और ईश्वरीय न्याय व्यवस्था से अवश्य ही दण्ड के भागी होंगे। इस में अविश्वास नहीं बनायें।

नई पीढ़ी के वैदिक जीवन पद्धति के प्रति अरुचि, अश्रद्धा, उपेक्षा का एक कारण आर्य समाज के विद्वान्, पण्डित, पुरोहित, कार्यकर्त्ता अधिकारी, प्रबन्धक, प्रवचन के विषय, प्रतिपादन, व्याख्यान शैली उनका व्यवहार समाज के भवन, आकार, रूप-रंग, साधन-सुविधा, साफ-सफाई, भोजन-आवास-विस्तर

से सम्बन्धित है। मात्र यज्ञ, सन्ध्या, घिसे-पिटे भजन-प्रवचनों से नहीं, नई पीढ़ी को कुछ नया भी चाहिए। बच्चो, किशोरों, युवकों को आकर्षित तथा प्रभावित करने के लिए समाजों में खेलकूद, संगीत, चित्रकला, कविता, भाषण, सुलेख, आसन, मन्त्रोच्चारण, सामान्य ज्ञान से सम्बन्धित विषयों पर प्रतियोगिताओं का भी आयोजन करना चाहिए। इन विषयों की कक्षाएं भी लगानी चाहिए, जिससे युवक आकर्षित होकर आयेंगे तब उनको खेलों के साथ-साथ धर्म व अध्यात्म से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान कराया जा सकता है। मात्र यज्ञ संध्या से नहीं आयेंगे।

आज भी देश में हजारों-लाखों सुसंस्कारी आत्माएं जन्म लेती हैं और उनकी व उनके माता-पिता की इच्छा होती है कि वे गुरुकुलों में जाकर वैदिक वाङ्मय के विद्वान् बनें, किन्तु गुरुकुलों की अभाव-ग्रस्त विपन्न दयनीय दुरावस्था को देखकर कोई भी वहां जाना-भिजवाना पसंद नहीं करता है। तपस्या के नाम से निम्न-न्यून-निकृष्ट स्तर के भोजन वस्त्र, बिस्तर, आवास, साधन-सुविधाओं को प्रदान करना अन्याय- अत्याचार-शोषण की श्रेणी में ही आता है। परिणाम स्वरूप विद्यार्थी कृश-कुरूप-विकृत-निर्बल तथा रूग्ण होते हैं। इन सब में सुधार होना चाहिए तभी पढ़े लिखे आर्य सज्जन अपनी सन्तानों को गुरूकुल में प्रसन्नता पूर्वक विद्वान् बनाने हेतु, अवश्य ही भेजेंगे।

युवा पढ़ने-सुनने की अपेक्षा प्रत्यक्ष व्यवहार को देखकर अधिक प्रभावित होते हैं। न केवल माता-पिता को बल्कि विद्वानों, पण्डितों, प्रवक्ताओं, संन्यासी महानुभावों को चाहिए कि व्यवहार तथा प्रवचन काल में शिष्टता, भ्रदता, शालीनता, बनानी चाहिए और लोभ ईर्ष्या-द्वेष, निन्दा-चुगली, आलस्य-प्रमाद, चंचलता, हंसी-मजाक तथा अधिक अपेक्षाओं का रखना आदि दोषों से बचना चाहिए। बड़े धार्मिक व्यक्तियों में ऐसे दोषों को देखकर धर्म तथा आध्यात्मिकता से बच्चे विमुख हो जाते हैं। उनके तथा उनके प्रवचनों के प्रति श्रद्धा, रूचि नहीं रहती है।

आर्य सज्जनों को चाहिए कि जैसे बच्चों को गणित अंग्रेजी, विज्ञान आदि विषयों को पढ़ाने के लिए ट्युशन रखते हैं वैसे ही धर्म, संस्कृति, सभ्यता, आध्यात्मिता से सम्बन्धित विषयों का परिज्ञान कराने के लिए योग्य विद्वानों को घर पर बुलाना चाहिए, जिससे वे वैदिक धर्मी बनें। वर्ष में एक या दो बार सार्वजनिक स्थलों पर युवाओं के ३-५-७ दिनों के शिविर लगाने चाहिए, जिससे वैदिक धर्म, दर्शन शिष्टाचार से सम्बन्धित विशेषज्ञों को बुलाकर युवकों को प्रशिक्षित किया जा सके। युवकों को वैदिक सिद्धान्तों को सरल रूप में स्पष्ट करने वाले पत्रकों, छोटी छोटी पुस्तकों को पढ़ाकर परीक्षा लेनी चाहिए, जिससे युवा वैदिक धर्म की मूलभूत बातों से अवगत हो जायें।

परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह न केवल माता-पिता को बल्कि धार्मिक, विद्वानों, पण्डितों, पुरोहितों, प्रवक्ताओं, समाज के, गुरूकुलों के आचार्यो में ऐसी प्रेरणा, उत्साह, पराक्रम बुद्धि का संचार करें कि सभी अपने कर्त्तव्यों का पूर्ण पुरुषार्थ, तपस्या, त्याग, निष्ठा से पालन करें और नई पीढ़ी को वैदिक धर्मी बनाकर वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार में आयी शिथिलता को दूर करें। इसी भावना तथा कामना के साथ।

सबका शुभेच्छुः
स्व० ज्ञानेश्वरार्य

स्वर्ग और नरक

स्वा० केवलानन्द सरस्वती
अलीगढ़ (उ०प्र०)

मानव योनि बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसी के धर्म से शरीरान्त के बाद मोक्ष तथा शरीरान्त के बाद ही मानवेतर योनियाँ या बन्ध मिलता है। यह व्यवस्था ईश्वरीय है अर्थात् ईश्वर के न्याय पर निर्भर है इससे सुख प्राप्त करने के लिए योग साधन वेदाध्ययन आदि अनेक शुभ कर्मो को करने की अपेक्षा है। क्या कोई उपाय है कि हम अपनी व्यवस्था में रह सुख भोगें। इस पर विचार करने से ज्ञात होता है कि हम परिवार तथा समाज को ही स्वर्ग बनाकर रहने का प्रयास करें तो अत्यन्त अच्छा होगा। अन्य सम्प्रदायों में तो स्वर्ग-नरक मरने के बाद ही मिलनेवाला है, पर वैदिक सिद्धान्त में स्वर्ग अपने बस में है। अपनी व्यवस्था में है। और इन्हीं परिवारों में जीते-जीते सम्भव है।

महर्षि दयानन्द ने सुख विशेष को स्वर्ग तथा दुःख विशेष को नरक कहा है। और यह दोनों इस धरा पर अपने शुभ कर्मो पर निर्भर हैं। इसके लिए वेद ज्ञान तो आवश्यक है ही। इसके लिए आत्मज्ञान होना परम आवश्यक है। जब व्यक्ति यह जानने का प्रयास करता है कि मैं कौन हूँ ?अगर वह चिन्तन मनन और स्वाध्याय पूर्वक अपने को अच्छी प्रकार जानने का प्रयास करे तो उसका ज्ञान बहुत बढ़ जाता है। जैसे नदी बाढ़ से अपने बन्ध को अतिक्रमण कर बहुत दूर तक फैल जाती है। वैसे ही यह आत्मज्ञ इन्द्रिय शरीर से परे तक उसका ज्ञान हो जाता है उसका ज्ञान इतना बढ़ जाता है कि वह स्वनिहित न हो, परार्थ ज्ञान युक्त हो जाता है। संवेदनशील हो जाता है। इसी से वेद कहता है -

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोकऽएकत्वमनुपश्यतः।।

व्यक्ति जब सभी जीवों में अपने जैसी आत्मा का अनुभव करने लगता है तब कैसा मोह और कैसा शोक। और अगर किसी को दुःख देता है तो अपने को हो दुःख की अनुभूति होती है। सुख देता है तो विशेष सुख भोगता अनुभव होता है। खाने में सुख मिलता है और खिलाने में आनन्द का अनुभव करता है। दृष्टान्त -

महर्षि दयानन्द ने कीचड़ में गाड़ी फँसी देखी, गाड़ीवान बैल को पीट रहा है। दयानन्द को अनुभव हुआ ये मार मेरी पीठ पर ही पड़ रही है। गाड़ीवान से कहा बैलों को न मार, उसने गुस्साते कहा, मार न तो तू गाड़ी निकालेगा। महर्षि ने बड़ी सरलता से कहा अरे भोले कुछ तू प्रयास कर कुछ मैं करूँ। बैलों को अलग करवा, कीचड़ से गाड़ी निकालकर चल दिये, लोग देखते ही रह गये। यह है आत्मज्ञाता। जो प्राणीमात्र के दुःख से द्रवित हो जावे। क्योंकि आत्मज्ञ को कर्मो के फल पर दृढ़ विश्वास होता है उसे प्राणीमात्र में वैसे ही आत्मा प्रतीत होती है, उसके सुख-दुःख वैसे ही हैं जैसे हमारे। ऐसा व्यक्ति ही इस धरा को स्वर्ग बना सकता है। तथा स्वर्ग का जीवन जी सकता है। जो प्रत्यक्ष को नहीं बना सकता उसका परोक्ष भी कल्पना मात्र ही हो सकता है। इसके लिएसभी को प्रयत्न करना चाहिए।

दूसरा - इसका लाभ व लक्षण यह है कि उसे मृत्यु भय बिल्कुल नहीं सताता वह बड़ी प्रसन्नता से जीर्ण शरीर को त्याग हँसता, खेलता, प्रसन्नता से दूसरा शरीर धारण कर लेता है। आत्मज्ञ के लक्षण ही

कृष्ण गीता में कहते हैं-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि,
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही। - गीता २/२२

वह व्यक्ति बार-बार मनुष्य योनि प्राप्त करता है। योगीराज कृष्ण कहते हैं। वह ज्ञानपूर्वक शरीर छोड़ता और जन्मता है। उसके लिए मोक्ष और मानव योनियों में जन्म में कोई दुःख-सुख नहीं होता। क्योंकि उसे अच्छी तरह मालूम है कि मोक्ष कितने ही दिनों का हो कैसा भी सुखदायी हो पर एक दिन पुनः पुण्य क्षय होने के बाद यहीं आना होगा। तो फिर जब मेरा वास्तविक घर यही है तो इसी को साफ-सुथरा क्यों न रखें। इसी में विशेष स्वर्ग सुख भोगें। इसमें इन्द्रिय जनित सुख है। और मोक्ष में भी इन्द्रियों के न रहने पर अपनी स्वाभाविक स्वशक्ति तथा संकल्प से इन्हीं सुखों का सूक्ष्म रूप है। आत्मा का यह जो स्वाभाविक ज्ञान इच्छा प्रयत्न है वह उसे सदैव सुखों के भोग के लिए प्रेरित करता रहे। पूर्ण विचारपूर्वक देखें तो सुख एक इन्द्रिय के माध्यम से भोगता है। अतः यह अपेक्षित सुख है। इसी कारण जीव अपनी आत्मज्ञता को भूल इन पञ्च भूतात्मक जगत् को अपने सुख का आधार मान पूर्ण रूपेण इन्हीं की सेवा शुश्रूषा में लग जाता है और प्रकृति को ही आत्मा मान बैठता है भोक्ता न रह भोग्य बन जाता है।यह संसर्ग दोष है। प्रकृति जड़ है, अतः अज्ञानता का पर्दा आत्मा पर भी छा जाता है। अगर यही ज्ञानपूर्वक करें जड़ को साधन मानें साध्य नहीं, तो उसका घर कभी न उजड़े, न मोक्ष चाहिए, न बन्ध, इसका नाम है स्वर्ग। जो जीव इस धरा और इस शरीर में वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था, पञ्चमहायज्ञ, सोलह संस्कार द्वारा सहज सुलभ है। मनुष्य योनि बार-बार मिल सकती है। और वैसे ही जैसे सर्प केंचुल छोड़ता है जीर्ण बदन को त्याग नवीन वस्त्र धारण करते हैं। इसमें दुःख और शोक का सवाल ही नहीं है।

यहाँ भोग भोगे भी जाते हैं और आगे के लिए भोग तैयार भी किए जाते हैं। इन भोगों का ज्ञान वैदिक साहित्य और दर्शन के स्वाध्याय के बिना सम्भव नहीं। मोक्ष में केवल पुण्य भाग ही भोगा जाता है। नया निर्माण नहीं होता। अतः पुण्य कितना भी बड़ा हो। एक दिन अवश्य समाप्त होगा। पर मनुष्य योनि में पुण्य (कर्मफल) भोगना तथा आगे के लिए पुण्य तैयार करना और अपने घर में ही नवीन वस्त्र बदलते हुए प्रसन्नता पूर्वक अनन्त काल तक रह सकते हैं। पर इसके लिए आत्मज्ञ बनना पड़ेगा। और यह आसान भी है। क्योंकि ईश्वरीय व्यवस्था में सभी क्रियाएँ इसी आत्मा द्वारा संचालित हो रही है। अतः संचालक को जानो जो शरीर द्वारा कर्त्ता है। प्रकृति जड़ (अज्ञ) है। पर परिणामी है। इसका उपयोग चेतन ही कर सकता है। ठीक इसके विपरीत अज्ञान ही नरक का कारण बनता है। परिवार में अधिकार और कर्त्तव्य का समन्वय होना चाहिए। जहाँ केवल अधिकार को महत्त्व देते हैं, कर्त्तव्य की अवहेलना करते हैं वही नरक है। इसी से योगीराज श्रीकृष्ण कहते हैं- ''कर्मण्येवाधि-कारस्ते मा फलेषु कदाचन।'' फल की इच्छा न कर कर्म पर ध्यान दो फल तो अवश्यंभावी है। सुख-शान्ति भी जीवन का अनुपम फल है। यह कर्म पर ही निर्भर है। यही 'योगः कर्मसु कौशलम्' भी है। इसे कर्म का कौशल कहा है।

इतना पवित्र और वैज्ञानिक तार्किक वेदज्ञान होने के बाद और सृष्टि की उत्पत्ति भी (तिब्बत) त्रिविष्टप एक ही स्थान पर हुई, एक मानव जाति हुए भी वेद ज्ञान भी प्रारम्भ से ही रहा फिर भी यह भिन्नता तथा अनेक मत-मतान्तरों का जाल क्यों कहाँ से उत्पन्न हुआ। इस पर गहराई से विचार किया जाये तो स्पष्ट हुआ कि यह आदर्श सदाचारपूर्ण वैदिक व्यवस्था भोगवादियों के लिए जटिल पड़ने लगी।

उनकी स्वच्छन्दता समाप्त हो गई जिसका परिणाम इससे अलग हो अपनी काल्पनिक स्वच्छन्दतापूर्ण व्यवस्था बनायी और सभी स्वच्छन्दतावादियों ने परमात्मा और उसके ज्ञान वेद दोनों को छोड़ा। परमात्मा के स्थान पर ईशु और मुहम्मद तथा अवतारों को विशेष मान्यता दी और इसकी मान्यता के कारण ही इनके बनाये ग्रन्थ को ईश्वरीय ग्रन्थ का स्थान दिया, जो किसी प्रकार से भी सार्वभौमिक सिद्ध नहीं हो सकते। न विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर सकते हैं। उनमें कुछ सत्य अवश्य है। क्योंकि बिना सत्य के झूठ नहीं टिक सकता पर वेद में वैज्ञानिकता ही वेद की जान है। तथा हर नियम सार्वभौमिक है। इसी से वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। साथ ही इस सृष्टि का कोई अंश इससे अछूता नहीं है। यह सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान है। इस कारण वंदनीय तथा गृहणीय है। एक परिवार को लेलें- यहाँ वधू, बेटी, बहन, माता, भगिनी, भाभी, देवरानी, मौसी, चाची, दादी आदि अनेक सम्बन्ध सूचक नाम हैं और सब शब्द यौगिक है तथा मर्यादा का भाव लिए हुए है और अर्थानुसार व्यवहार भी है। पर अन्य में यह असम्भव है। एक माता के सिवा सबके साथ पशुवत् व्यवहार है। पौराणिकों में वाममार्गी भी इसी पशुवत् वृत्ति के शिकार हैं। ये स्वर्ग मोक्ष की क्या बात करें! जब व्यवहार-जगत् ही शुद्ध नहीं। अतः नरक स्वर्ग का मूल कारण धर्म के नाम पर यह अभद्र व्यवहार निन्दित ही है। आप स्वयं चिन्तन करें-

पत्नी होवे पतिव्रता पत्निव्रत पति होय।
निश्चय ऐसे गृहस्थ में विघ्न न आवे कोय।।
जिस घर में नारी सुखी, नहीं देखें अपमान।
उस घर में सन्तान ही सूर वीर बलवान।।
सुन्दर नारी पतिव्रता सन्तति आज्ञाकारी।
जिसका ऐसा गृह है वही गृहस्थ अधिकारी।।
जिस घर में धेनु खड़ी हृष्ट पुष्ट बलवान।
वेद गान और यज्ञ हो वह घर स्वर्ग समान।।
जिस घर में होता सदा अतिथि सत्कार।
भिक्षु निरासा नहीं फिरे ना होवे तिरस्कार।।
कथा कीर्तन हो जहाँ हिंसा कभी न होय।
वेदाज्ञानुकूल सब स्वर्ग कहावे सोय।।

●●●

जटायु-सम्पाति

पंचवटी को जाते हुए मार्ग में जब पहली बार राम ने जटायु को देखा तो उसे राक्षसों का ही पक्षधर समझकर उन्होंने उसका परिचय पूछा। तब जटायु-''उवाच वत्स मां विद्धि वयस्य पितुरात्मनः।'' (अरण्य० १४।३) बोला-हे वत्स ! तुम मुझे अपने पिता का मित्र जानो। ''स तं पितृसखं बुद्ध्वा पूजयामास राघवः।''(अरण्य० १४।४) तब रामचन्द्र जी ने उन्हें अपने पिता का मित्र समझकर उनका सत्कार किया। तत्पश्चात्- ''स तस्य कुलमव्यग्रमथ पप्रच्छ नाम च।'' (१४।४) रामचन्द्र जी ने शान्त होकर उनसे उनका नाम और कुल पूछा। इस पर -

रामस्य वचनं श्रुत्वा कुलमात्मानमेव च।
आचचक्षे द्विजस्तस्मै सर्वभूतसमुद्भवम्।। १४।५

राम के पूछने पर उन्होंने अपना नाम और कुल बताया और साथ ही सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति का वर्णन किया। यहाँ रामचन्द्र जी के बिना पूछे ही प्राणिमात्र की उत्पत्ति का वर्णन किया जाना अप्रासंगिक तथा प्रकरणविरूद्ध तो है ही, सर्वथा वेद के विपरीत तथा सृष्टिक्रम के विरूद्ध होने से निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है। जब रावण सीता को अपहरण करके ले-जा रहा था, तब जटायु को देखकर सीता ने पुकार लगाई -

जटायो पश्य मामार्य ह्रियमाणामनाथवत्।
अनेन राक्षसेन्द्रेण करूणं पापकर्मणा।। अरण्य० ४६।३८

हे आर्य जटायु ! यह पापी राक्षसपति रावण मुझे अनाथ की भाँति उठाए ले-जा रहा है।' यहाँ जटायु को आर्य और द्विज कहा है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य की द्विज संज्ञा है। रावण को अपना परिचय देते हुए जटायु कहते हैं- ''जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराज महाबलः।'' (अरण्य० ५०।४)- ' मैं गृध्रकूट का भूतपूर्व राजा हूँ और मेरा नाम जटायु है। उस समय जटायु राजपाट का परित्याग कर वानप्रस्थ के रूप में वन में रहता था। जटाएँ रखने के कारण वह जटायु के नाम से प्रसिद्ध हो गया था। शासक होने से वह क्षत्रिय और क्षत्रिय होने से द्विजों के अन्तर्गत था। इस प्रकार (१) आर्य होने, (२) द्विज होने और (३) महाराज दशरथ का मित्र होने से जटायु मनुष्यवर्ग के अन्तर्गत आता है, पक्षिवर्ग के अन्तर्गत नहीं। आर्य परम्परा के अनुसार समय आने पर वह वानप्रस्थ हो गया था। यह ठीक है कि पक्षी भी द्विज कहलाते हैं, पर वे न आर्य कहलाते हैं और न दशरथ के मित्र ही होते हैं और न कहीं के राजा।

अन्यत्र (अरण्य० ५०।२) जटायु के लिए 'खगेश' या 'खगोत्तम' शब्द प्रयुक्त हुआ है। 'ख' का अर्थ 'आकाश' प्रसिद्ध है। 'ग' का अर्थ है गमन करने वाला। तब 'खगोत्तम' का अर्थ हुआ 'आकाश में गमन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ'। आकाश में गमन उड़कर किया जाता है। इस प्रकार 'खगोत्तम' का अर्थ हुआ 'आकाश में उड़ान करने वालों में सबसे श्रेष्ठ'

प्राचीन काल में आर्यो का ज्ञान-विज्ञान बहुत बढ़ा-चढ़ा था। रामायण-काल में जहाँ पुष्पक विमान जैसे बड़े विमान होते थे, वहीं छोटे-छोटे विमान भी होते थे जिनमें एक-दो व्यक्ति बैठकर उड़ सकते थे।

जहाँ कहीं जटायु रावण, हनुमान आदि के उड़ने का वर्णन आता है, वहाँ उनका इसी प्रकार के विमानों से उड़ना समझना चाहिए। आजकल भी जब कोई बड़ा व्यक्ति विमान द्वारा विदेश जाता है तो कहा जाता है- **He flew to London or New York** जब रावण पंचवटी में सीता का अपहरण करने गया तो अपने स्वचालित विमान को सीता की कुटिया से कुछ दूरी पर खड़ा करके गया था और सीता को बलात् दबोच कर उसे विमान में अपने बराबर में बिठाकर ले उड़ा था।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में हनुमान् के लंका में उतरने (उत्पपात) का जैसा वर्णन (सर्ग १ श्लोक ४२-४३) मिलता है वह बिल्कुल वैसा ही है जैसा वर्त्तमान में हैलीकाप्टर के हैलीपैड पर उतरते समय का होता है। वहाँ लिखा है -

उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः।।
समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः।।

अपनी बाधाओं की उपेक्षा न करके अत्यन्त वेग से कूद पड़े। उस समय वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् ने अपने को गरुड़ के समान समझा। वेगपूर्वक कूदते समय उनके वेगजनित वायुवेग से आस-पास के वृक्ष और उनकी शाखाएँ और लतागुल्म उखड़ गए।

रावण और जटायु का युद्ध आकाश में हुआ था। दुर्जनतोषन्याय से यदि यह मान लिया जाए कि जटायु पक्षी था, तो भी रावण तो निश्चित रूप से मनुष्य ही था। तब रावण की तरह जटायु को भी अपने विमान पर सवार मनुष्य स्वीकार करने में क्या विसंगति है ?वह भी एक भूतपूर्व राजा था।

संस्कृत में 'वी' पक्षी को कहते हैं, और 'मान' का अर्थ है- जैसा (सदृश)। इसलिए विमान का अर्थ हुआ पक्षी जैसा। लोकभाषा में विमान को चीलगाड़ी बोलते हैं-विमान के डैने भी पक्षी के पंख (पक्ष) जैसे ही होते हैं।

पंचतन्त्र की एक कथा में लिखा है कि धूर्त्त मनुष्य विष्णु का रूप बनाकर गरुड़ की आकृति के वाहन पर सवार होकर आता था। गयाचिन्तामणि नामी ग्रन्थ में मयूर की आकृति के विमान का वर्णन है।

यहाँ बिजली से चलने वाले, अग्नि और जल से चलनेवाले, वाष्प से चलने वाले, तेल से चलने वाले, सूर्य की किरणों से चलने वाले, चुम्बक से चलने वाले, सूर्यकान्त-चन्द्रकान्त मणियों से चलने वाले और केवल वायु से चलने वाले-आठ प्रकार के विमानों का उल्लेख हुआ है।

विमान प्रायः गरुड़ की आकृति के बनते थे, क्योंकि विष्णु नामक सम्राट् के वाहन की आकृति वैसी थी- 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः लोकस्तदनुवर्त्तते'। आज भी इण्डोनेशिया में विमान को गरुड़ कहा जाता है, राजवल्ली चन्द्रवल्ली जैसे नामों से पुकारा जाता है।

विमानों के बनाने वाले कारीगर इस देश में बौद्धकाल तक रहे।

रामचन्द्र जी से भेंट होने के बाद जटायु ने पंचवटी में रहते राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में अपनी पुत्रवधू के समान सीता की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। तदनन्तर हम जटायु को सीता का

जहाँ कहीं जटायु रावण, हनुमान आदि के उड़ने का वर्णन आता है, वहाँ उनका इसी प्रकार के विमानों से उड़ना समझना चाहिए। आजकल भी जब कोई बड़ा व्यक्ति विमान द्वारा विदेश जाता है तो कहा जाता है- **He flew to London or New York** जब रावण पंचवटी में सीता का अपहरण करने गया तो अपने स्वचालित विमान को सीता की कुटिया से कुछ दूरी पर खड़ा करके गया था और सीता को बलात् दबोच कर उसे विमान में अपने बराबर में बिठाकर ले उड़ा था।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में हनुमान् के लंका में उतरने (उत्पपात) का जैसा वर्णन (सर्ग १ श्लोक ४२-४३) मिलता है वह बिल्कुल वैसा ही है जैसा वर्त्तमान में हैलीकाप्टर के हैलीपैड पर उतरते समय का होता है। वहाँ लिखा है -

उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन्।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः।।
समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः।।

अपनी बाधाओं की उपेक्षा न करके अत्यन्त वेग से कूद पड़े। उस समय वनवासिश्रेष्ठ हनुमान् ने अपने को गरुड़ के समान समझा। वेगपूर्वक कूदते समय उनके वेगजनित वायुवेग से आस-पास के वृक्ष और उनकी शाखाएँ और लतागुल्म उखड़ गए।

रावण और जटायु का युद्ध आकाश में हुआ था। दुर्जनतोषन्याय से यदि यह मान लिया जाए कि जटायु पक्षी था, तो भी रावण तो निश्चित रूप से मनुष्य ही था। तब रावण की तरह जटायु को भी अपने विमान पर सवार मनुष्य स्वीकार करने में क्या विसंगति है ?वह भी एक भूतपूर्व राजा था।

संस्कृत में 'वी' पक्षी को कहते हैं, और 'मान' का अर्थ है- जैसा (सदृश)। इसलिए विमान का अर्थ हुआ पक्षी जैसा। लोकभाषा में विमान को चीलगाड़ी बोलते हैं-विमान के डैने भी पक्षी के पंख (पक्ष) जैसे ही होते हैं।

पंचतन्त्र की एक कथा में लिखा है कि धूर्त्त मनुष्य विष्णु का रूप बनाकर गरुड़ की आकृति के वाहन पर सवार होकर आता था। गयाचिन्तामणि नामी ग्रन्थ में मयूर की आकृति के विमान का वर्णन है।

यहाँ बिजली से चलने वाले, अग्नि और जल से चलनेवाले, वाष्प से चलने वाले, तेल से चलने वाले, सूर्य की किरणों से चलने वाले, चुम्बक से चलने वाले, सूर्यकान्त-चन्द्रकान्त मणियों से चलने वाले और केवल वायु से चलने वाले-आठ प्रकार के विमानों का उल्लेख हुआ है।

विमान प्रायः गरुड़ की आकृति के बनते थे, क्योंकि विष्णु नामक सम्राट् के वाहन की आकृति वैसी थी- 'यद्यदाचरति श्रेष्ठः लोकस्तदनुवर्त्तते'। आज भी इण्डोनेशिया में विमान को गरुड़ कहा जाता है, राजवल्ली चन्द्रवल्ली जैसे नामों से पुकारा जाता है।

विमानों के बनाने वाले कारीगर इस देश में बौद्धकाल तक रहे।

रामचन्द्र जी से भेंट होने के बाद जटायु ने पंचवटी में रहते राम-लक्ष्मण की अनुपस्थिति में अपनी पुत्रवधू के समान सीता की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। तदनन्तर हम जटायु को सीता का

अपहरण करके भागते हुए रावण से सीता की रक्षा के निमित्त लड़ता हुआ और इसी प्रयास में प्राणों की आहुति देता पाते हैं। वहीं रावण को अपना परिचय देते हुए जटायु ने कहा था -

जटायुर्नाम नाम्नाहं गृध्रराजो महाबलः।
षष्टिवर्षोत्तरशतं मम जातस्य रावण।।
वृद्धोऽहं युवा धन्वी सशरः कवची रथी।
तथाप्यादाय वैदेहीं कुशली न गमिष्यसि।।
न शक्तस्त्वं बलाद्धर्तुं वैदेहीं मम पश्यतः।
हेतुभिर्न्यायसंयुक्तैर्ध्रुवां वेदश्रुतीमिव।। - ५०।४, २१, २२

हे रावण ! मैं इस समय १६० वर्ष का हूँ और तुम अभी जवान हो और कवच, बाण और रथ आदि साधनों से युक्त हो। तब भी तुम मेरे रहते बलपूर्वक सीता को नहीं ले-जा सकते, जिस प्रकार तर्क एवं हेतुओं से सिद्ध वेद का कोई खण्डन नहीं कर सकता।

जटायु ने पूरी शक्ति से युद्ध किया, परन्तु सीता को मुक्त न करा सके। ''अभ्यधावत वैदेही स्वबन्धुमिव दुःखिता।'' (५१।४)-रक्तरंजित जटायु को पृथिवी पर गिरा देखकर दुःखी सीता सगे-सम्बन्धी के समान जटायु की ओर दौड़ पड़ी। कुछ समय के बाद सीता की खोज करते हुए राम-लक्ष्मण जटायु के पास पहुँचे। जटायु ने उन्हें बताया -

यामोषधिमिव युष्मन्नन्वेषसि महावने।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम्।।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा।। - ६७।१५, १६

हे चिरंजीव ! इस वन में ओषधि के समान जिस सीता को तुम खोज रहे हो, उस जानकी को और मेरे प्राणों को रावण हर ले गया। शक्तिशाली रावण द्वारा हरी जाती हुई सीता को मैंने स्वयं देखा है।

यह सब जानकर राम ने जटायु को गले से लगा लिया और लक्ष्मण-सहित फूट-फूटकर रोने लगे। प्राण निकलने से पूर्व जटायु ने यह भी बता दिया कि रावण जानकी को दक्षिण की ओर ले गया है। रावण विश्रवा का पुत्र है तथा प्रसिद्ध कुबेर का सगा छोटा भाई है। इससे अधिक वह नहीं बोल सका और उसके प्राण निकल गए। उस समय राम के उद्‌गार -

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशे गृध्रस्य मत्कृते च परन्तप।।
राजा दशरथः श्रीमान् यथा मम महायशः।
पूजनीयश्य मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः।।
सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम्।
गृध्रराज दिधक्ष्यामि मत्कृते निधनं गतम्।।

●●●

श्रीराम और मांसाहार

श्रीराम मांस खाते थे अथवा नहीं- यह विषय अत्यन्त विवादस्पद है। कुछ लोगों की धारणा है कि वे क्षत्रिय थे अतः मांस खाते थे, परन्तु हमारे विचार में यह धारणा अशुद्ध है। यहाँ हम रामायण के कुछ स्थलों पर विचार करेंगे। जब श्रीराम को वन-गमन की आज्ञा हुई तब वे अपनी माता कौसल्या से आज्ञा लेने के लिए राजप्रसाद में आये। माता ने उन्हें बैठने के लिए आसन और खाने के लिए कुछ व स्तुएँ दीं, उस समय श्रीराम ने कहा -

चतुर्दश हि वर्षाणि वत्स्यामि विजने वने।
मधुमूलफलेर्जीवन् हित्वा मुनिवदामिषम्।। - आये० २०।२६,३०

माता अब तो मुझे चौदह वर्ष तक घोर वन में वास करना पड़ेगा अतः मैं आमिष भोजन को छोड़कर मुनिजन-कथित कन्द-मूल, फल आदि खाकर ही अपना जीवन-निर्वाह करूंगा।

इस श्लोक में 'आमिष' शब्द को देखकर मांस-भक्षण करने वाले कहते हैं कि श्रीराम मांस-भक्षण करते थे तभी तो उन्होंने कहा, ''मैं आमिष को छोड़कर कन्दमूल-फलों से निर्वाह करूँगा। यदि इस श्लोक का ऐसा ही अर्थ माना जाय तो रामायण में आगे चलकर मांस-भक्षण के जितने प्रसंग आते हैं वे सब प्रक्षिप्त सिद्ध हो जाते हैं। फिर महलों में मांस खाने का प्रसंग सम्पूर्ण रामायण में कहीं भी नहीं है, अतः इस श्लोक से ही श्रीराम के मांसाहार का निषेध हो जाता है।

कोश में आमिष का एक अर्थ प्रिय वा मनोहर वस्तु भी है, अतः उपर्युक्त श्लोक का ठीक अर्थ यह होगा कि मैं मिष्ठान्न आदि प्रिय वा मनोहर वस्तुओं को छोड़कर मुनियों जैसा आहार करूँगा। यही अर्थ ठीक एवं श्रीराम की भावना के अनुकूल है। इसके लिए एक अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत है। पंडित भगवद्दत्तजी द्वारा सम्पादित रामायण के पश्चिमोत्तरीय संस्करण में यह श्लोक इस प्रकार है-

स्वादूनि हित्वा भोज्यानि फलमूलकृताशनः।। - अयो० २० । २१

यहाँ स्पष्ट ही स्वादुपदार्थों को छोड़कर फल-मूल खाने का वर्णन है। छिन्ने मूले नव शाखा न पत्रम्। मूल के कट जाने पर वृक्ष में न शाखा ही उग सकती है और न पत्ते ही आ सकते हैं। इस श्लोक से तो श्रीराम के मांस-भक्षण की जड़ ही कट गई है।

रामायण में सीताजी द्वारा गंगा पर सुरा के घड़े और मांस युक्त भात चढ़ाने का वर्णन आता है, परन्तु यह प्रकरण वाम-मार्गियों द्वारा मिलाया गया है। सीताजी द्वारा गंगा पर शराब और मांसयुक्त भात की बलि देना सीताजी की भावनाओं के सर्वथा प्रतिकूल है। सीताजी वन जाने के लिए श्रीराम से प्रार्थना करते हुए कहती है-

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः। - अयो० २७ । १५

मैं वन में उत्पन्न फलों और मूलों को खाकर अपना निर्वाह कर लूँगी इसमें तनिक भी संशय नहीं हैं।

पित्रा नियुक्ता भगवन् प्रवेक्ष्यामस्तपोवनम्।

धर्ममेव चरिष्यामस्तत्र मूलफलाशनाः। - अयो० ५४ । १६

जब श्रीराम महर्षि भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे तो उन्होंने अपना परिचय देकर और वनवास की बात बताकर कहा -

भगवन् । हम लोग पिता के आदेशानुसार तपोवन में प्रवेश करेंगे और वहाँ फलमूल खाकर धर्माचरण करेंगे। श्रीराम ने अपने मित्र गुह से भी कहा था -

कुशचीराजिनधरं फलमूलाशिनं च माम्।
विद्धि प्राणिहितं धर्मे तापसं वनगोचरम्।। - अयो० ५०।४४,४५

मैं तो कुश, चीर और मृगचर्म धारण करता हूँ और फल तथा कन्दमूल खाता हूँ। आप मुझे पिता की आज्ञा से धर्म-पालन में सावधान एवं वन में विचरनेवाला तपस्वी समझें।

श्रीराम को दो प्रतिज्ञाएँ प्रसिद्ध हैं। एक तो उन्होंने अपनी माता कैकेयी के समक्ष प्रकट की थी-

रामो द्विर्नाभिभाषते। अयो० १८ । ३०

राम दो प्रकार की बात नहीं करता, जो कहता है वही करता है।

दूसरी प्रतिज्ञा उन्होंने सीताजी के समक्ष इस रूप में रक्खी थी-

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणम्।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।। - अर० १०।१६

मुझे भले ही अपने प्राण त्यागने पड़ें अथवा लक्ष्मण सहित तुम्हें ही क्यों न छोड़ना पड़े, किन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता, विशेषकर उस प्रतिज्ञा को जो ब्राह्मणों के सामने की जाये।

श्रीराम ने फलमूल आदि खाने की प्रतिज्ञा न केवल अपनी माता और गुह के समक्ष की है अपितु महर्षि भरद्वाज के समक्ष भी अपनी प्रतिज्ञा को दोहराया है जो ब्राह्मण ही नहीं, ऋषि हैं, अतः स्पष्ट सिद्ध है कि श्रीराम मांस नहीं खाते थे।

वन को चलते समय श्रीलक्ष्मणजी ने भी अपनी उपयोगिता बताते हुए कहा था-

आहरिष्यामि ते नित्यं मूलानि च फलानि च।
वन्यानि यानि चान्यानि स्वाहार्हाणि तपस्विनाम्।। - अयो० ३१ । २६

मैं आपके लिए कन्दमूल-फल और तपस्वियों के भोजन करने योग्य वन में उत्पन्न होने वाले शाक-पात आदि वस्तुएँ नित्य ला दिया करूँगा।

इस प्रकार श्रीराम आदि की प्रतिज्ञाओं को देखते हुए हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे मांस नहीं खाते थे। जहाँ उनके मांस खाने का उल्लेख है वह स्थल निश्चितरूप से प्रक्षेप है।

●●●

ध्वनि प्रदूषण–एक सामाजिक समस्या

- नवीन सहगल
सचिव-जि०वे०प्र०संगठन
लखनऊ (उ०प्र०)

प्रकृति में जितने भी प्राणी हैं उनकी आवाज़ एक-दूसरे से मेल नहीं खाती हैं। हर एक प्राणी की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। व्यवहार, आचरण, ध्वनि तथा संकेत एक-दूसरे से मेल नहीं खाते हैं और यही विविधता सृष्टि को सुन्दर और सुव्यवस्थित बनाए रखने में सहायता करती है।

चिड़ियों का चहचहाना, स्तनधारी पशुओं का चिल्लाना तथा हिंस्र पशुओं का दहाड़ना जंगल के वातावरण को संगीतमय बना देता है। प्राणियों का आपस में व्यवहार भले ही अन्योन्याश्रित हो, फिर भी वह सृष्टि और पर्यावरण के लिए पोषक है। उनका मधुर व्यवहार और मधुर आवाज़ सृष्टि को सुन्दर और मधुमय बनाता है।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः।। - यजुः० १३।२६

(वनस्पति) वृक्ष एवं औषधियाँ, (नः) हमारे लिए (मधुमान्) मधुरता युक्त हो। (सूर्यः) सूर्य (मधुमान्) मधुरता युक्त (अस्तु) हो। (गावः)गौएँ (नः) हमारे लिए आनन्ददायक हों।

वृक्ष एवं औषधियां हमारे लिए मधुर हों। सूर्य मधुरतायुक्त प्रकाशित हों और गौवें हमारे लिए आनन्ददायक हों। सूर्य इतना प्रखर और तेजस्वी और अग्नि का वर्षा करने वाला है कि यदि वह अपना स्थान छोड़कर पृथ्वी की तरफ थोड़ा भी खिसक जाए तो सम्पूर्ण भूलोक जलकर राख हो जाए। वेदों में उसके मधुर अर्थात सुखदायक होने की बात कही गई है तो क्या हिंस्त्र पशु, निष्ठुर परिवर्तन एवं सृष्टिचक्र की रचना और विनाश हमारे लिए मधुर नहीं बन सकते ?

प्राणियों की आपस में हिंसा मधुर इसलिए है कि वह सृष्टि नियमों के अनुकूल हैं, अतः मानव भी आपस में मधुरता का व्यवहार करे। उसका बोलना चलना रहन-सहन तथा अन्यों के साथ सम्बन्ध मधुर होने चाहिए।

व्यवस्था के अनुसार सभी प्राणियों के एक दूसरे के प्रति आचरण नियमों से बन्धे हुए हैं। उसे परिवर्तित करना सृष्टि नियम के विरूद्ध है, लेकिन मानव अनियमितताओं का भण्डार है, वह किसी भी सृष्टि के नियम को मानने के लिए वचनबद्ध नहीं है, अतः उसी को मधुरता का पाठ पढ़ाना आवश्यक हो गया है। वेदों में जो भी संदेश दिया गया है वह सिर्फ मनुष्य के लिए दिया गया है।

वाणी की मधुरता, व्यवहार की मधुरता और सम्बन्धों की मधुरता मानव समाज के लिए अत्यावश्यक है। हम एक दूसरे के साथ कठोर वाणी का प्रयोग करते हैं। अपनी ध्वनि के उतार चढ़ाव के द्वारा दूसरे पर रौब जमाना चाहते हैं। इससे हमारे सम्बन्धों में कटुता आ जाती है।

वेद कहता है-

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः।
घृतात् स्वादीयो मधुनश्चय वाचेत।।

(अगोरूधायः) प्रार्थना पर ध्यान देने वाले (गविषेः) सुन्दर वचन या स्तुति के इच्छुक (द्युक्षायः) तेजस्वी देदीप्यमान इन्द्र के लिए (घृतात्) घी से (मधुनः च) और मधु से, (स्वादीयः) अधिक स्वादिष्ट (दस्म्यम्) मनोरम (वचः) वचन वाणी (वाचेत) बोले।

प्रार्थना पर ध्यान देने वाले सुन्दर वचन या स्तुति के इच्छुक और तेजोमय इन्द्र के लिए घी और मधु से भी अधिक स्वादिष्ट तथा मनोहर वचन बोलें।

प्रकृति प्रदत्त पदार्थो में घी और मधु (शहद)से अन्य कोई पदार्थ अमृत तुल्य नहीं है। वेद का संदेश है कि वह अपनी वाणी को मधु और घी से भी अधिक मधुर बनाए। सम्पर्क और संवाद से बिगड़े हुए भी सम्बन्धी मधुर बनते हैं।

क्लबों, आर्केष्ट्राओं तथा मन्दिरों मस्जिदों में लाउडस्पीकर पर जोर-जोर से चिल्लाकर कर्कश ध्वनि के द्वारा सारे वातावरण को अशान्त बनाया जाता है, यह समाज के स्वास्थ्य के लिए बहुत ही घातक सिद्ध हुआ है। करेला और नीमचढ़ा उक्ति के अनुसार उस पर यन्त्रों, मश्नरियों, सड़क पर दौड़ने वाले वाहनों, ट्रकों, हवाईजहाजों की कानफोड़ आवाजें मनुष्य को मानसिक दृष्टि से विकलांग बना रही हैं। सहज साध्य साधनों से जो बात बन सकती है उसकी जगह अनावश्यक कृत्रिम यन्त्रों का प्रयोग किया जा रहा है। जहाँ साईकिल से काम चल सकता है वहाँ मोटर साईकिल का प्रयोग किया जा रहा है और जहाँ टू-ह्विलर से काम बन सकता है, वहाँ फोर ह्विलर का उपयोग किया जा रहा है। इच्छाओं का कोई अन्त नहीं है, लेकिन मानव की शारीरिक और मानसिक क्षमताओं की सीमाएँ हैं। उसका विचार नहीं हो रहा है। अपने निरर्थक अहंभाव को प्रदर्शित करने के लिए स्वयं का और समाज के स्वास्थ्य का ध्यान नही रखा जा रहा है। इन यन्त्रों से निकलने वाला धुआँ और ध्वनि शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़ने में लगा हुआ है। हाथी और सिंहों की दहाड़ जंगल के वातावरण को मधुर संगीतमय तो बना सकती है लेकिन शादी ब्याह में बज रहे बैंड बाजे का कर्कश संगीत एक बीमार, कमजोर और वृद्ध व्यक्ति को मरणासन्न बना सकता है। इसलिए हम जंगल के प्राणियों से मधुर ध्वनि की आशा तो करते हैं, लेकिन इन पॉप संगीत, आर्केष्ट्रा, बैंड बाजा और देर रात तक चल रहे डिस्कोडाँस संगीत से मधुरता की आशा नहीं कर सकते।

अथर्ववेद कहता है -

निर्दुर्मण्य ऊर्जा मधुमती वाक्।।१।।
मधुमतीस्थ मधुमती वाचमुदेयम्।।२।। - अथर्व० १६ । २। १, २

(दुः अर्मण्यः) दुर्गति को प्राप्त कराने वाली अवस्थाएँ (निः) दूर हो। (ऊर्जा) शक्तिशाली या रसयुक्त (मधुमती) मधुरता से युक्त (वाक्) वाणी हो। (मधुमतीः) वाक शक्तिशाली मधुरता से युक्त (स्थ) है। (मधुमतीम्) मधुर (वाचम्) वाणी (उदेयम) बोलूं।

भावार्थ- दुर्गति दूर हो। वाणी शक्तिशाली एवं मधुर हो। वाक्शक्ति मधुरता से युक्त हो। मैं मधुर वाणी बोलूं।

"वेद-परिचय"

आचार्य सोमदेव जी
मुम्बई (महाराष्ट्र)

वेद शब्द का अर्थ :- वेद शब्द विद् (ज्ञाने) विद् सत्तायाम् विद्-लाभे और विद्-विचारणे, इन चार धातुओं से बनता है जिसका तात्पर्य है जिन ग्रन्थों में ज्ञान विज्ञान (सभी सत्य विद्याएं) विद्यमान हैं। जिन ग्रन्थों के द्वारा सभी सत्य विद्याओं का ज्ञान होता है, जिन ग्रन्थों के द्वारा ज्ञान विज्ञान विषयक लाभ प्राप्त होता है तथा जिन ग्रन्थों में विविध विषयों का विचार चिन्तन या विवेचन किया गया है वे ग्रन्थ वेद कहलाते हैं। इसलिये महर्षि मनु ने लिखा है कि वेद समस्त ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं। वेद ही धर्म अर्थात् कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराने वाले ग्रन्थ हैं। वेद के विषय में आगे भी लिखा है कि चारों वर्ण, चारों आश्रम, पृथिवी, अन्तरिक्ष और द्युलोक तीनों लोकों तथा भूत, भविष्य और वर्तमान में होने वाले पदार्थो को वेदों से ही जाना जाता हैं। महर्षि मनु के इन शब्दों से स्पष्ट होता है कि वेदों से समस्त ज्ञान-विज्ञान, कर्तव्य, धर्म अधर्मादि का बोध होता

अनिवार्यताः- परमात्मा संसार को बनानेवाला, पालन करने वाला और प्रलय करने वाला है। ऐसा उल्लेख महर्षि व्यास ने वेदान्त दर्शन में किया है। सृष्टि (संसार) का निर्माण करके संसार में मनुष्य को किस प्रकार रहना चाहिये, सांसारिक (भौतिक) पदार्थो का किस प्रकार उपयोग करके उनसे लाभ उठाना चाहिए, इस विषय का ज्ञान भी परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के रूप में दिया। ऐसा उल्लेख वेदान्त दर्शन में किया गया है। जिस प्रकार रेडियो, टी.वी., कम्प्यूटर, फ्रिज आदि बनाने वाली कम्पनियाँ इन वस्तुओं को बनाने के साथ-साथ इनका कैसे उपयोग करना तथा उनकी देख-रेख सुरक्षा आदि किस प्रकार करनी चाहिए, इस विषय की एक छोटी पुस्तिका भी बनती है। जिससे उन पदार्थो का यथोचित उपयोग करके मनुष्य लाभ उठा सके। इसलिये बाजार में विक्रेता (बेचनेवाला) टी.वी., फ्रिजादि के साथ छोटी सी पुस्तिका भी क्रेता (खरीदनेवाले) को देता है। जब एक छोटे से सामान के साथ उसके विषय में पुस्तिका के माध्यम से ज्ञान भी दिया जाता है तो संसार के बनाने वाले परमात्मा ने भी संसार में कैसे रहना चाहिये ?सांसारिक पदार्थो का उपयोग किस प्रकार करना चाहिये और उनसे लाभ कैसे उठाना चाहिये इत्यादि विषयों का ज्ञान भी दियाहै जो वेदों के नाम से प्रसिद्ध है। इसीलिये वेदान्त दर्शन के रचयिता ने लिखा कि संसार को बनाने वाला और सांसारिक पदार्थो का ज्ञान देनेवाला परमात्मा भी एक ही है। अलग-अलग नहीं। मनुष्य आँखों से देख सके इसके लिये परमेश्वर ने सृष्टि के प्रारम्भ में सूर्य का निर्माण किया, जिसके प्रकाश में वह आँखों से देखकर चलने में समर्थ हुआ। आँखों के लिये जैसे सूर्य का निर्माण किया, उसी प्रकार आन्तरिक (नेत्र) आदि (मस्तिष्क) की उन्नति के लिये, उसकी सक्रियता के लिये परमेश्वर ने बुद्धि के (वेद ज्ञानरूपी) सूर्य को प्रकाशित किया। वेदों के ज्ञानरूपी प्रकाश के द्वारा मनुष्य अपनी बुद्धि से सत्य-असत्य, कर्तव्य-अकर्तव्य को जानकर जीवन सुखी बना सकता है।

वेद उतने ही प्राचीन हैं, जितना प्राचीन सूर्य, मनुष्य और मानवीय सृष्टि है। इसलिये वेद को सनातन चक्षु कहा जाता है।

वेदों का महत्व :- भारतीय परम्परा में वेदों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जो व्यक्ति धर्म को जानना चाहता है। धर्म क्या है, अधर्म क्या है, कौनसा कर्म शुभ है या अशुभ है ?यह जानने वालों के लिये

सर्वोपरि प्रमाण वेद ही है।

इसलिये वेद को धर्म का आदि मूल (कारण) कहा गया है। इतना ही नहीं वेदोंकी महत्ता का वर्णन करते हुए यहाँ तक लिख दिया गया है कि जो व्यक्ति वेदों की प्रामाणिकता को स्वीकार नहीं करता है वह नास्तिक है। वेदों का विद्वान् ही राज्य की शासन व्यवस्था, सेना का संचालन तथा न्याय की व्यवस्था करने में सफल हो सकता है। अर्थात् राजा सेनापति या न्यायाधीश आदि वेदों के विद्वान् ही बन सकते हैं। इतना ही नहीं मनु ने तो यहाँ तक लिख दिया कि जिस व्यक्ति (स्त्री या पुरुष) ने कम से कम एक वेद भी न पढ़ा हो वह गृहस्थ में प्रवेश करने योग्य नहीं है। अर्थात् उसका विवाह नहीं हो सकता। वेदों के महत्व का वर्णन करते हुए लिखा कि जो व्यक्ति वेदों को न पढ़कर अन्य ग्रन्थों को पढ़ने में परिश्रम करता है वह व्यक्ति जीवितावस्था में ही परिवार सहित शूद्रता को प्राप्त होता है अर्थात् शूद्र हो जाता है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान :- वेद किसी व्यक्ति के लिखे हुए ग्रन्थ नहीं हैं यह ईश्वरीय ज्ञान है इसीलिये वेदों को अपौरुषेय कहा जाता है (अर्थात् किसी पुरुष की रचना नहीं है अपितु ईश्वर रचित हैं इसलिये इन्हें अपौरुषेय कहते हैं) जैसे मनुष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी या विद्वान् बनता है। बिना पढ़े वह किसी भी भाषा या विषय का ज्ञाता नहीं बन सकता है। मनुष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करता है, गुरु ने अपने गुरु से ज्ञान प्राप्त किया ऐसे जितने-जितने पीछे जायेंगे तो अन्त में प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सृष्टि में सर्वप्रथम मनुष्य उत्पन्न हुए तो उनको ज्ञान किसने दिया, उनका गुरु कौन था?इसका उत्तर देते हुए महर्षि पतंजलि ने लिखा है कि परमात्मा ही आदि गुरु अर्थात् गुरुओं का भी गुरु है। परमेश्वर ने ही सृष्टि के प्रारम्भ में अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा इन चार ऋषियों के माध्यम से चारों वेदों का ज्ञान दिया। वेदान्त दर्शन में भी लिखा कि वेद शास्त्र का ज्ञान देनेवाला ब्रह्म अर्थात् परमात्मा है परमात्मा का वचन होने के कारण वेदों की प्रामाणिकता है। ऐतरेय ब्राह्मण में भी लिखा है कि परमात्मा ने वेदों को उत्पन्न किया। महाभारत में भी उल्लेख है कि परमात्मा ने दिव्य वेद वाणी को उत्पन्न किया। परमात्मा का ज्ञान होने के कारण न इसका प्रारम्भ हुआ है न इसका अन्त (नाश) होगा अर्थात् वेद नित्य और अनादि है। जैसे परमात्मा नित्य और अनादि है वैसे ही उसका ज्ञान भी नित्य और अनादि है।

इसमें मनुष्यों के लिये हितकारक सभी कर्मो का विधान है। जिस प्रकार मनुष्य श्वास-प्रश्वास द्वारा वायु को अपने शरीर के अन्दर लेता है और बाहर निकालता है, वैसे ही सृष्टि के प्रारम्भ में परमेश्वर अपने वेद ज्ञान को ऋषियों के माध्यम से देता है और प्रलयावस्था में अपने अन्दर वापस ले लेता है ऐसा ब्राह्मण ग्रंथों में लिखकर स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार वेदों के ईश्वरीय ज्ञान (अपौरुषेय) होने के विषय में विविध शास्त्रों में विस्तार से लिखा है जिससे स्पष्ट होता है कि वेद अपौरुषेय (ईश्वरीय ज्ञान हैं)।

ईश्वरीय (अपौरुषेय) ज्ञान का वैशिष्ट्य :- ईश्वरीय ज्ञान में क्या विशेषताएँ होनी चाहिये ?जिससे स्पष्ट हो जाय कि यह ग्रन्थ ही ईश्वरीय ज्ञान है। क्योंकि कोई वेद को ईश्वर का ज्ञान कहता है तो कोई कुरआन को बतलाता है, तो कोई बाईबिल को, तो कोई जन्दावस्था को बतलाता है। अतः कुछ ऐसी विशेषताएँ होनी चाहिये जो केवल ईश्वरीय ज्ञान में ही स्पष्ट दिखती हैं अन्य में नहीं। जिनके कारण ईश्वरीय ज्ञान का निर्णय किया जा सके। इस विषय में विद्वानों ने विस्तार से विवेचन किया है। संक्षेप में कुछ विशेषताएँ अधोलिखत हैं।

१. ईश्वरीय ज्ञान का उपदेश सृष्टि के प्रारम्भ में होना चाहिये यदि संसार बनने पर मनुष्यों की दो चार पीढ़ी व्यतीत होने के बाद परमात्मा ज्ञान देता है तो वह पक्षपाती हो जायेगा, क्योंकि उसने दो चार पीढ़ी के मनुष्यों को अपने ज्ञान से वंचित रखा और बाद में उत्पन्न होने वाले मनुष्यों को अपने (ईश्वरीय) ज्ञान से लाभान्वित किया। परमात्मा पक्षपात रहित है, इसलिये उसने अपना ज्ञान सृष्टि के प्रारम्भ में ही जब मनुष्य उत्पन्न हुए थे तभी उसने ज्ञान दिया। इस विशेषता पर विचार करते हैं तो स्पष्ट होता है कि कुरआन को बने १४०० वर्ष , बाईबिल को बने २०१४ वर्ष तथा जन्दावस्था को बने ||००० वर्ष हुए हैं। भारतीय परम्परा के अनुसार वेद उतने ही पुराने हैं जितना यह संसार है। जो विद्वान् इस मान्यता से सहमत नहीं हैं वे भी एक मत हैं कि वेद संसार के पुस्तकालय में सबसे पुराने ग्रन्थ हैं। जैसा कि प्रो. मैक्समूलर ने लिखा है। Regred is the oldest of the world.

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और श्रीकृष्ण वेदों के विद्वान थे। उन्हें रामायण और महाभारत में वेद वेदांगवित् (अर्थात् वेद-वेदांगों के ज्ञाता) लिखा है। श्रीराम ने हनुमान जी को वेदों का महान ज्ञाता कहा है। इतना ही नहीं मनुस्मृति में तो यहाँ तक लिखा है कि सृष्टि के प्रारम्भ में वेदों के शब्दों के द्वारा ही सब पदार्थों और प्राणियों के नाम, कर्म और सांसारिक नियमों की रचना की गयी।

२. परमात्मा अपरिवर्तनशील है। उसके बनाये हुए नियम भी अपरिवर्तनशील है। (जैसे हजारों वर्ष पहले अग्नि पर हाथ रखने से हाथ जलता था, आज भी जलता है और आगे भी जलेगा।) इसी प्रकार उसका ज्ञान (ईश्वरीय ज्ञान) भी अपरिवर्तनशील है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता है। मनुष्य अल्पज्ञ है अतः उसके ज्ञान में, उसके ग्रन्थों में परिवर्तन-परिवर्धन और संशोधन होता है। परमात्मा सर्वज्ञ है, अतः उसके ज्ञान (ईश्वरीय ज्ञान) में परिवर्तनादि नहीं होता है। किन्तु बाईबिल का पुराना संस्करण (ओल्ड टेस्टामेन्ट) था उसका संशोधित रूप नया संस्करण (न्यू टेस्टामेन्ट) के रूप में बना। कुरआन को इलहाम (ईश्वरीय ज्ञान) मानने वालों का भी मत है कि पहले जबूर-फिर तौरेत उसके बाद इंजील और इसमें भी संशोधन और कुछ परिवर्तन करके कुरआन की रचना हुई। इस परीक्षा की कसौटी पर वेद ही ईश्वरीय ज्ञान के रूप में प्रमाणित होते हैं। क्योंकि उनमें कोई परिवर्तन आज तक नहीं हुआ। एक शब्द या मात्रा न्यूनाधिक या आगे पीछे नहीं हुए हैं। वेदों को यथावत् रखने के लिये पदपाठ-क्रमपाठ जटापाठादि की रचना की गयी है।

३. ईश्वरीय ज्ञान की तीसरी विशेषता है कि उसमें किसी व्यक्ति, स्थान, देश विशेष या राजा महाराजाओं का वर्णन नहीं होता है। राजा हो जाने के बाद ही उसका इतिहास लिखा जाता है। ईश्वरीय ज्ञान तो सबसे पहले दिया जाता है। जिन ग्रन्थों में राजा-महाराजाओं का इतिहास या देश विशेष का भौगोलिक वर्णन है जैसे बाईबिल में पैलेस्टाइन के अनेक स्थानों का तथा वहाँ के यहूदी राजाओं का वर्णन है। इसी प्रकार कुरआन में अरब देश और मोहम्मद साहब का वर्णन है। जब कि वेदों में किसी स्थान या राजा का वर्णन नहीं है अतः ईश्वरीय ज्ञान की कसौटी में वेद ही प्रमाणित होते हैं।

४. ईश्वरीय ज्ञान में सृष्टि क्रम के विरूद्ध कोई वर्णन नहीं होना चाहिये। जैसे बाईबिल में कुमारी मरियम (बिना किसी पुरुष के संयोग)से ईसा मसीह का उत्पन्न होना, ईसा द्वारा मुर्दो को जीवित कर देना, बिना दवाई के अन्धों की आँखें ठीक कर देना, इसी प्रकार कुरान में लिखा कि पहाड़ बादलों की तरह उड़ते थे, फरिश्ते आसमान में रहते हैं, बहिश्त अर्थात् स्वर्ग में दूध और शहद की नदियाँ बहती हैं आदि।

इसी तरह पुराणों में लिखा है कि अगस्त्य ऋषि ने समुद्र पी लिया, एक राक्षस पृथिवी को चटाई की तरह लपेट कर सिरहाने रखकर सो गया, हनुमान जी ने सूर्य को मुंह ले लिया, आदि आदि सृष्टि क्रम के विरूद्ध बहुत सी बातें जिन ग्रन्थों में हैं वे ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकते। वेदों में ऐसा सृष्टि क्रम विरूद्ध कोई वर्णन नहीं है अतः वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं।

५. ईश्वरीय ज्ञान में मनुष्यों के कल्याण के लिये विविध ज्ञान-विज्ञान का वर्णन होना चाहिये, बुद्धि या तर्क विरूद्ध अथवा अन्ध विश्वास युक्त बातें नहीं होनी चाहिये जैसे सब प्रकार के प्रकाश का मूल कारण सूर्य है, उसी प्रकार सभी विद्याओं का मूल कारण वेद है इसलिये वेदों में शरीर विज्ञान, चिकित्सा शास्त्र, भौतिक विज्ञान-राजनीति-समाज शास्त्र, अध्यात्म विज्ञान, औषधि विज्ञान-शास्त्र विज्ञान, विविध यान, तार विज्ञान (टेलीफोन) आदि विविध विषयों का वर्णन है। जब कि यह विवेचन ईश्वरीय ज्ञान के तथाकथित कहलाने वाले ग्रन्थ (बाईबिल-कुरआन आदि) में नहीं हैं। अन्ध विश्वास ग्रस्त होकर ही गैलेलियों-ब्रूनो आदि वैज्ञानिकों को अन्ध विश्वासियों ने बहुत यातना दी। ईश्वरीय ज्ञान वे ही ग्रन्थ कहलायेंगे जो मनुष्यों में परस्पर घृणा, नफरत, ईर्ष्या-द्वेष नहीं फैलाते हैं। एक दूसरे से कलह, लड़ाई, झगड़ा करने तथा नष्ट करने की प्रेरणा नहीं देते हैं। अपितु सभी के साथ प्रेम से मिलकर रहने की प्रेरणा देते हैं जैसा कि वेदों में लिखा है कि ''मैं मित्र की दृष्टि से सभी को देखूं सब के साथ मित्र के समान व्यवहार करूं।

ईश्वरीय ज्ञान कहलाने वाले ग्रन्थों के प्रमाणों से भी स्पष्ट होना चाहिये कि ये ग्रन्थ ईश्वर-प्रदत्त हैं। वेदों में अनेक प्रमाण हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान के ग्रन्थ हैं। इस प्रकार अनेक विशेषताओं से वेद ईश्वरीय ज्ञान (अपौरुषेय) हैं यह स्पष्ट होता हैं।

वेदों का स्वरूप :-

वेदत्रयी :- उच्चारण की दृष्टि से वेद मन्त्रों की रचना तीन प्रकार की होने के कारण वेद तीन हैं ऐसा उल्लेख शास्त्रों में मिलता हैं। जिन मन्त्रों की अर्थ के अनुसार पाद व्यवस्था होती हैं अर्थात् जो मन्त्र पद्यरूप में हैं उन छन्दोबद्ध मन्त्रों को ऋचा कहते है तथा जिन मन्त्रों का गान किया जाता है, जो गीतिका रूप में हैं, उनको साम कहते हैं तथा शेष सभी गद्य रूप में पठित मन्त्र यजु कहलाते हैं, ऐसा महर्षि जैमिनि ने मीमांसा दर्शन में लिखा है। वेदों में मन्त्र पद्य-गद्य और गीतिका रूप में होने के कारण वेदों को वेदत्रयी के नाम से जाना जाता है। महर्षि जैमिनि के अनुसार वेद के जिन मन्त्रों में पाद व्यवस्था नहीं है, जो छन्दोबद्ध नहीं है तथा गीतिका रूप में नहीं है अर्थात् जिनका संगीत के रूप गान नहीं किया जा सकता है उन सब गद्यात्मक मन्त्रों का यजु कहते हैं।

ऋग्वेद के मन्त्र पद्य के रूप में छन्दोबद्ध हैं इसलिये इन ऋचाओं के वेद को ऋग्वेद कहा जाता है। सामवेद के मन्त्रों का गान किया जाता है, इसके मन्त्र गीतिका रूप में विद्यमान हैं इसलिये गीतिका रूप में विद्यमान मन्त्रों का वर्णन होने के कारण इसे सामवेद कहते हैं तथा गद्यात्मक यजुः वाक्यों की अधिकता के कारण यजुर्वेद कहलाता है। अथर्ववेद में तीनों ही प्रकार (पद्य-गद्य-गीतिका रूप) के मन्त्र हैं।

वैदिक काल की नारियाँ

१. गार्गी - भारतीय प्राचीन इतिहास और दर्शनों में गार्गी का नाम बहुत प्रसिद्ध है। पूर्वकाल में ही ये विदुषी महिला बहुत ऊँचे सोपान पर चढ़ गयी थी। यद्यपि इनका नाम कोई और रहा हो, परन्तु गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने से इन्हें गार्गी नाम से ही जाना जाता है। गार्गी बड़ी पढ़ी-लिखी महिला थी, इसीलिए तो ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में इनका नाम विश्वभर में विख्यात हो गया। इनकी वक्तव्य और तर्क शैली इतनी प्रभावशाली थी कि बड़े-बड़े विद्वान् भी शास्त्रार्थों में इनके सामने नहीं ठहरते थे।

एक बार मिथलापुरी के राजा जनक ने अपने राज्य में एक बहुत बड़ा विद्वानों का शास्त्रार्थ कराया। इस शास्त्रार्थ में विश्वभर के बड़े-बड़े वेद के विद्वान् बुलाये गये थे। इस सन्त-समागम की सूचना को सुनकर गार्गी देवी भी वहाँ पहुँच गयीं। राजा जनक ने यह घोषणा कर दी थी कि जो इस शास्त्रार्थ में सर्वोपरि विजेता होगा उसके लिए सोने से सींग जड़ी हुई दस हजार (१०,०००) गायें प्रदान की जायेंगी।

इसके बाद शास्त्रार्थ समर प्रारम्भ हुआ और महर्षि याज्ञवल्क्य जी ने धीरे-धीरे उस सभा केसमस्त विद्वानों को परास्त कर दिया। सब विद्वानों को शास्त्रार्थ में हराकर जब याज्ञवल्क्य जी उन गायों को ले जाने लगे तो गार्गी ने भी उनसे शास्त्रार्थ करने का निवेदन किया। यह सुनकर याज्ञवल्क्यजी ने गार्गी से शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया। इसके बाद राजा जनक की आज्ञा को पाकर गार्गीजी ने महर्षि याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछने प्रारम्भ कर दिये और याज्ञवल्क्यजी भी उनके सटीक उत्तर देने लगे। यद्यपि गार्गी ने ईश्वर-सम्बन्धी जितने प्रश्न किये थे उनके उत्तर उन्हें मिल गये, परन्तु अन्तिम प्रश्नों पर याज्ञवल्क्यजी भी चुप हो गये।

इसके बाद विद्वानों की सभा ने गार्गी को ही इस शास्त्रार्थ का विजेता घोषित कर दिया और उन्हें ही उन गायों को ले जाने का अधिकार दे दिया। उस समय इतने बड़े वयोवृद्ध वेद-मनीषी का सभा में अपमान करना गार्गी को अच्छा न लगा और उन्होंने सभा में यह घोषणा कर दी कि - इस सभा में याज्ञवल्क्य जी से बड़ा कोई विद्वान् नहीं है अर्थात् इस शास्त्रार्थ में इन्हीं की विजय हुई है।

गार्गी के इस प्रकार के वचनों को सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया और सब लोग उनकी ओर को ताकने लगे। गार्गी की उदारता और त्याग को देखकर याज्ञवल्क्य भी उनकी प्रशंसा करने लगे। गार्गी जी के कहने से वे दस हजार स्वर्ण भूषित गायें भी यावल्क्य को ही प्रदान कर दी गयीं। इसके बाद गार्गी की विद्वत्ता की प्रशंसा भी सब लोग करने लगे। उनकी विनम्रता और उज्ज्वल चरित्र को लोग कभी नहीं भूल सकते हैं। वास्तव में ऐसी धर्म परायणा स्त्रियों ने ही स्त्री समाज को गौरव प्रदान किया है। गार्गी की चर्चा वृहदारण्यक उपनिषद में विस्तार से की गयी है।

क्रमश...अगले अंक में

शिव की पहचान

पौराणिक विचारधारा के लोग प्रायः शिव को शिवरात्रि के देवता बाबा विश्वनाथ को मानते है जो वाराणसी में शिव मंदिर के रूप में स्थापित है।

वहीं वैदिक विचारधारा के लोग (आर्य) उस शिव को मान्यता देते हैं जिस शिव को महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने व्यवहार भानु के अनुसार शिव नाम भी उस परमपिता परमात्मा का ही नाम है जो पृथ्वी के समस्त प्राणियों का कल्याण करता है।

पौराणिक मतानुसार बाबा विश्वनाथ को त्रिगुनातीत, भावातीत, कल्पातीत, करूणेश्वर, प्रलयंकार, महेश्वर आदि के रूप में मानते हैं क्योंकि यह ऐश्वर्यशाली नाम अन्नपूर्णा देवी द्वारा खैरात के रूप में मिला हुआ है। ''ब्रम्हवैवर्त'' पुराण के काशी खण्ड में लिखा है कि प्रसंग के समय पार्वती जी शिव से नाराज हो गई, पुनः काशी में अन्नपूर्णा के नाम से प्रकट हुई, काशी में प्रकट होने के कारण काशी में उनके नाम का अन्नपूर्णा मंदिर भी है। जिसका पौराणिकों में बहुत ही महत्व है।

पौराणिक पंडितों के मतानुसार आदि शंकराचार्य जब काशी आये तो पहले इस मंदिर में जाकर दर्शन किये और अन्न की याचना की, आचार्य शंकर की भाँति महेश्वर शिव ने भी काशी जाकर अन्नपूर्णा देवी से अन्न की याचना की और देवी जी ने उन्हें अन्न देकर उनकी भूख शान्ति की।

पौराणिक पंडित अन्नपूर्णा की महिमा इस प्रकार से बताते है।

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शंकर प्राणवल्लये। ज्ञानवैराग्यसिद्धयार्थ भिक्षां देहि च पार्वति।।

विचित्रवसने देवि त्वत्र दानरतेऽनधे। शिवनृत्यकृतामोदे अन्नपूर्णे नमोस्तुते।।

पौराणिकों के अनुसार देवी की कृपा से कोई भूखा नही रहता।

बहुत ही आश्चर्य की बात यह है कि दुनियां के विश्वनाथ शिवरात्रि के देवता अन्न से खाली है। इससे साफ तौर पर स्पष्ट होता है कि विश्वनाथ कोई और ही है। विश्वनाथ मंदिर में स्थापित पत्थर की मूर्ति विश्वनाथ नहीं हो सकते।

विश्वनाथ संस्कृत शब्द है।

विश्वस्य नाथः विश्वनाथः। जो समस्त संसार का नाम हो। नाथृ याच्त्रोपता पैश्वर्याशीः षुः धातु से सिद्धनाथ शब्द है। नाथशब्द स्वामी, रक्षक, पालक आदि अर्थो का वाचक है। इस प्रकार से जड़ चेतन का लालन पालन करने वाला है उसे ही आर्य लोग विश्वनाथ कहते हैं।

जिस विश्वनाथ को वेद, शास्त्र, उपनिषदो में प्रतिपादित है। उस ओ३म् नाम में ही ईश्वर के विराट, अग्नि, विश्व, शंकर, न्यायकारी आदि नाम समाहित है। क्योंकि वह अपनी सत्ता से सम्पूर्ण जगत में रमा हुआ है।

उस विश्वरूप ईश्वर की महिमा वेदों में इस प्रकार से वर्णित है।

गर्मो यो अपां, गर्मो वनानां गर्भश्च स्थातां गर्मश्चरथाम्।

आद्रौचिद्स्मा, अन्तर्दुरोणे विशां न विश्वो-अमृतः स्वाधीः।। ऋग।। १।१०।२।।

अन्न को उत्पन्न करने वाला अन्न को देने वाला वही ईश्वर विश्वनाथ है। तभी उस निराकार परमेश्वर से प्रार्थना करते है।

ओम् अन्नपतेऽअन्नस्य नो देह्यनामीवस्य। शुष्मिणः।

प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।। पजु० ११/८३

इसलिये मैं पुनः दुनियाँ के उच्चविचार धारा वाले मनुष्यों से निवेदन करता हूँ जरा विचार करो। कि असली विश्वनाथ कौन है।

इति।

पं० आचार्य देव माधव
वैदिक उपदेशक/पुरोहित
मुरलीपुर, रार, कानपुर नगर

ब्रह्मचारी दयानन्द

भर्तृहरि जी ने एक स्थान पर लिखा है-

मत्तेभकुम्भ दलने भुवि सन्ति शूराः,
केचित्प्रचण्ड मृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः।। (श्रृंगारशतक, ५८)

मत्त गजराज के मस्तक को फाड़नेवाले और प्रचण्ड सिंह को मारने वाले वीर तो संसार में बहुत मिल जाएँगे, परन्तु कामदेव के घमण्ड को खण्डित करने वाला कोई विरला ही मनुष्य होगा। ऋषि के जीवन के आलोक से ऐसा प्रतीत होता है कि स्वामी जी उन विरले मनुष्यों में से ही थे। शंकर की भाँति मूलशंकर ने भी कामदेव को भस्म कर दिया था।

यदि हम इतिहास के पृष्ठों को उलटें तो ब्रह्मचारी तो और भी मिलेंगे, परन्तु महर्षि दयानन्द अद्भुत और निराले ब्रह्मचारी थे। आइये कुछ ब्रह्मचारियों के जीवनों का अवलोकन करें -

इस धरा-धाम पर महावीर हनुमान का नाम किसने न सुना होगा। आप जीवन-पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। अपने ब्रह्मचर्य के बल पर आपने कैसे भयंकर एवं अद्भुत कर्म किये थे यह सर्वविदित ही है। परन्तु हनुमान जी ब्रह्मचारी क्यों रहे ?लोकोपकार के लिए ?नहीं, अपने स्वामी राम को रिझाने के लिए।

परशुराम भी ब्रह्मचारी थे परन्तु आपने अपने ब्रह्मचर्य का उपयोग किस प्रकार किया ?२१ बार क्षत्रियों का संहार करके।

भीष्म पितामह भी ब्रह्मचारी थे। परन्तु आपने ब्रह्मचर्य-धारण किसलिए किया ?संसार के उपकार और उद्धार के लिए नहीं, अपितु पिता की तुच्छ कामना को पूर्ण करने के लिए। निस्सन्देह बहुत बड़ा त्याग और बलिदान था, परन्तु यह ब्रह्मचर्य उनकी विवशता था।

शंकराचार्य भी ब्रह्मचारी थे परन्तु जब आप मण्डन मिश्र की धर्मपत्नी के सामने निरुत्तर हो गये तो एक मास की अवधि लेकर आपने एक राजा के शरीर में प्रविष्ट होकर गृहस्थ का क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त किया था, ऐसा उनका इतिहास बतलाता है। प्रत्यक्ष में न सही परोक्ष में ही सही, अखण्ड ब्रह्मचर्य तो न रहा।

अब तनिक महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य को भी देखिये। महर्षि दयानन्द माता-पिता अथवा किसी स्वामी को प्रसन्न करने और रिझाने के लिए ब्रह्मचारी नहीं बने। संसार का संहार करने के लिए भी उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण नहीं किया था। उन्होंने ब्रह्मचर्य धारण किया था मृत्युञ्जय बनने के लिए, सच्चे शिव के दर्शन करने के लिए, संसार से कुरीतियों और पाखण्ड का खण्डन करने के लिए, समस्त संसार में वैदिक सभ्यता और संस्कृति का नाद बजाने के लिए, संसार का उपकार और उद्धार करने के लिए। हुए न अद्भुत ब्रह्मचारी !

लीजिये महर्षि के विमल ब्रह्मचर्य की कुछ घटनाओं का रसामृतपान कीजिये-

एक बार महर्षि कुछ व्यक्तियों के साथ एक शिवालय के पास से निकल रहे थे। चलते-चलते उन्होंने अपना सिर झुका दिया। किसी ने कहा- ''हमारी मूर्तियों में कितनी शक्ति है, दयानन्द-से नास्तिक का सिर स्वयं झुका दिया।'' ऋषि ने एक नग्न बाला की ओर संकेत करते हुए कहा, ''देखते नहीं यह मातृशक्ति है। मैंने इसी के लिये सिर झुकाया है।'' कैसा पावन विचार। एक बालिका में भी

मातृशक्ति की भावना।

जब महर्षि दयानन्द बंगाल में प्रचारार्थ पधारे तो प्रसिद्ध साधक श्री अश्विनी कुमार दत्त जी भी उनके सत्संग में जाया करते थे। एक दिन दत्त महाशय ने एकान्त पाकर स्वामी जी से प्रश्न किया, ''क्या आपको काम ने कभी नहीं सताया?'' ऋषि ने आँखें बन्द करके ध्यानमग्न हो २-३ मिनट में अपने सम्पूर्ण जीवन पर दृष्टि दौड़ाकर कहा, ''जहाँ तक मैं स्मृति दौड़ाता हूँ, मुझे मेरे जीवन में ऐसा अवसर स्मरण नहीं पड़ता।'' इस उत्तर को सुनकर उत्तेजित हो दत्त महाशय ने कहा, ''क्या आप हाड़-मांस के बने हुए नहीं हैं ?'' ऋषिवर ने इसका जो उत्तर दिया, ब्रह्मचर्य-पालन के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति को उसे हृदय में धारण कर लेना चाहिए। उन्होंने कहा, ''अश्विनी कुमार जी ! अवकाश ही नहीं है।'' अश्विनी कुमार जी इस पर सन्तुष्ट होकर चले गये।

सचमुच ऋषि दयानन्द के ऊपर इतना कार्य-भार था कि उन्हें उस सम्बन्ध में सोचने और विचारने का अवसर ही नहीं मिलता था। साधु टी०एल० वास्वानी ने उनके सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है : **He was married to his mission.** अर्थात् वे अपने मिशन के साथ विवाहित थे।

हरिद्वार में एक अवधूत मथुराप्रसाद जी नामक उच्च-कोटि के योगी हुए हैं। सवा सौ वर्ष से अधिक आयु पाकर सन् १६१८ में उन्होंने शरीर-त्याग किया था। उनसे किसी ने ऋषि के ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया, ''दयानन्द बहुत वीर था। इस प्रकार का अखण्ड ब्रह्मचारी पुस्तकों में सुनने में आता है, देखने में विरला मिलता है। दयानन्द पुस्तकों में वर्णित ब्रह्मचारी थे।''

गांधी जी ने महर्षि के सम्बन्ध में एक बार अपने एक लेख में लिखा था- **I envy his Brahmacharya but at once a despair** अर्थात् मुझे महर्षि के ब्रह्मचर्य से डाह (ईर्ष्या) होता है परन्तु जब मैं उन-जैसे ब्रह्मचारी बनने की बात सोचता हूँ तो एकदम निराश हो जाता हूँ।

बाबू देवेन्द्रनाथ ने लिखा है, ''मुरादाबाद के स्वर्गीय राजा जयकिशन दास ने हमसे कहा था कि जिस जोर, जिस आग्रह और जिस उत्साह के साथ स्वामी जी ब्रह्मचर्य की आवश्यकता प्रतिपादित करते थे, उस प्रकार से इस विषय पर बोलते हुए हमने किसी को नहीं सुना। वह सबसे अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया करते थे।''

स्वामी जी ने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और महत्त्व पर बल देते हुए लिखा है-

''जो अपने कुल की उत्तमता, उत्तम सन्तान, दीर्घायु, सुशील, बुद्धि, बल, पराक्रमयुक्त विद्वान् और श्रीमान् करना चाहें वे सोलहवें वर्ष से पूर्व कन्या और पच्चीसवें वर्ष से पूर्व पुत्र का विवाह कभी न करें। यही सब सुधारों का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य और सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि इस अवस्था में ब्रह्मचर्य रखाके अपने सन्तानों को विद्या और सुशिक्षा ग्रहण करावें कि जिससे उत्तम सन्तान होवें। (संस्कारविधि, गर्भाधान प्रकरण)

ऋषिवर ब्रह्मचर्य को ही देश के उद्धार और पतन का कारण मानते थे। सन् १८८१ में लॉर्ड रिपन ने चित्तैड़ में एक दरबार का आयोजन किया था। इसमें सारे राजस्थान से राजा-महाराजा एकत्रित हुए थे। इस अवसर पर महर्षि को भी आमन्त्रित किया गया था और वे उदयपुर के अतिथि थे। विद्यार्थियों को विद्या-दान दिया और अनेकों को पण्डित बनाया। विद्वत्ता की दृष्टि से श्री गोस्वामी उदयप्रकाश जी द्वितीय शिष्य थे। श्री पण्डित उदयप्रकाश जी के दो पुत्र थे (१) श्री पण्डित नन्दकिशोर जी और (२) श्री पंडित मुकुन्ददेव जी। मुकुन्ददेव जी ने गुरु विरजानन्द जी की एक जीवनी लिखी थी। उसमें एक स्थान पर उन्होंने लिखा था -

''हमारा स्वामी दयानन्द जी से कुछ सम्बन्ध नहीं। न हम दयानन्द स्वामी के मतानुयायी, न आर्य

भाई।.... स्वामी दयानन्द जी में साहस, गाम्भीर्य आदि गुण तो थे ही परन्तु ब्रह्मचर्य-गुण अद्वितीय एवं लोकोत्तर था जिस एक गुण का होना भी आजकल असम्भव है।''

मथुरा-अविस्थति के समय महर्षि दयानन्द के ब्रह्मचर्य का वर्णन करते हुए स्वामी सत्यानन्द जी लिखते हैं -

''वे बाजारों में चलते, गलियों में जाते और घाट से बार-बार पानी लाते थे। इन स्थानों में सैकड़ों स्त्रियाँ इधर-उधर आती-जाती थीं, परन्तु ढाई वर्ष में कभी किसी ने उन्हें किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर देखते नहीं देखा। वे सदा नीची मार्ग-विलोकिनी दृष्टि रखकर चला करते थे। उनकी इस वृत्ति की सारी मथुरा में धाक थी। मन्दिरों में, घाटों पर, विश्रान्तों में, पाठशालाओं में, बाजारों में, हाटों पर, गृहों में, चौबों के अखाड़ों में और विजयापान की मण्डलियों में- सर्वत्र श्री दयानन्द की सुशीलता और अभंग ब्रह्मचर्य-व्रत का गुणगान किया जाता था।''

ऋषि का यह गुण ऐसा था कि विरोधियों ने भी इसकी प्रशंसा की है। यहाँ इस सम्बन्ध में उनके जीवन की एक घटना प्रसिद्ध पौराणिक पत्र 'परमार्थ' के ब्रह्मचर्याङ्क से उद्‌धृत की जाती है-

''आर्यसमाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द अपने प्रचारकाल में एक बार लाहौर में ब्रह्मचर्य की महिमा का उपदेश कर रहे थे। ब्रह्मचर्य की आश्चर्यजनक शक्ति का प्रभाव सुनकर वहाँ के एक सुप्रसिद्ध बैरिस्टर ने कहा, स्वामी जी। ये सब पुरानी कहानियाँ तो हमने बहुत-सी सुनी हैं। मैंने सुना है कि आप भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं। आप ही कुछ करामात दिखाइये। भरी सभा में ऐसी बात एक सम्भ्रान्त प्रतिष्ठित व्यक्ति के मुख से सुनकर स्वामी दयानन्द जी मौन हो गये। उन्हें मौन देखकर श्रोताओं को एक प्रकार की गम्भीर निराशा का अनुभव हुआ। सभा का कार्यक्रम समाप्त हो जाने के पश्चात् जब वे बैरिस्टर महोदय अपनी चार घोड़ों से जुती बग्घी पर बैठकर जाने लगे तो स्वामी जी ने दौड़कर पीछे से उस गाड़ी को बलपूर्वक पकड़ लिया। सहस्रों नर-नारियों ने देखा कि ऊपर कोच पर स्थित साईस बारम्बार घोड़ों पर कोड़े फटकार रहा है किन्तु घोड़े अपनी स्थान पर ही पैर पटक रहे हैं। यथाशक्ति जोर लगाने पर भी आगे एक इंच भी नहीं बढ़ रहे हैं। जो जनता स्वामी जी के प्रति नैराश्य का अनुभव करने लगी थी, वह इस अपूर्व पराक्रम को देखकर मुक्तकण्ड से स्वामी जी का जयघोष करने लगी। आश्चर्य से गाड़ी में बैठे हुए बैरिस्टर साहब ने पीछे मुड़कर देखा तो अपने कहे हुए प्रश्न का ऐसा क्रियात्मक उत्तर पाकर गाड़ी से कूदकर भावावेश में श्री स्वामी जी के चरणों से लिपट गये और अपने अपराध की क्षमा-याचना करने लगे। स्वामी जी ने कहा, 'भैया ! यह शक्ति तो केवल मेरी निजी ब्रह्मचर्य - रक्षा की है। यदि मेरे माता-पिता और उनसे पहले की पीढ़ियों ने शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्यव्रत का पालन किया होता तो इससे भी अधिक चमत्कार आप देख सकते थे।'

स्वामी दयानन्द के जीवन की इस घटना से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यदि इस ओर ध्यान दिया जायें तो आज असम्भव जान पड़ने वाली बातें भी सम्भव हो सकती हैं।''

महर्षि दयानन्द ने वेद के इस मन्त्र को अक्षरशः सत्य सिद्ध कर दिखाया-

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते।। (अथर्व० ११।५।२६),

अर्थात् ब्रह्मचारी प्राण, अपान, व्यान, मेधा, यश, वीर्य आदि को धारण करता हुआ समुद्र के जल के ऊपर तपते हुए सूर्य के समान तप करता है। विद्या और व्रत में निष्णात होकर ब्रह्मचारी अपने अपूर्व तपोबल और आश्चर्यजनक कृत्यों से संसार को चकित कर डालता है और संसार में सर्वत्र सुशोभित होता है।

अपने ब्रह्मचर्य-बल से ही उन्होंने मृत्यु को भी पराभूत और परास्त किया। मृत्यु आती थी परन्तु ब्रह्मचारी दयानन्द ठोकर मारकर उसे परे हटाते थे। उन्होंने वेद की इस शिक्षा को भी सिद्ध कर दिखाया।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। (अथर्व० ११।५।१६)

ब्रह्मचर्य-रूपी तप से देव मृत्यु को मार भगाते हैं।

महर्षि दयानन्द के अखण्ड ब्रह्मचर्य की गौरव-गरिमा का गान करते हुए श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय 'दयानन्द-ब्रह्मचर्य का पोषक' शीर्षक के अन्तर्गत लिखते हैं-

''भारत की महिमा का मूल क्या था?ब्रह्मचर्य ! हिन्दुओं की जिस गरीयसी प्रतिभा को देखकर प्राचीन यूनान और रोम आश्चर्यान्वित हो गये थे उसका हेतु क्या था?ब्रह्मचर्य ! जो उपनिषदादि अनुपम और उपादेय ग्रन्थमाला के रचयिता थे, वे कौन थे?ब्रह्मचारी ! रामायण और महाभारत के जिस अलौकिक सौन्दर्य को देखकर मनुष्य-मण्डली अवाक् रह जाती है, उसके सृष्टिकर्ता कौन थे ?ब्रह्मचारी ! गम्भीर विचारशीलता और तत्त्वानुसन्धान के अद्‌भुत क्षेत्र स्वरूप सांख्यमीमांसा की रचना किन्होंने की ?ब्रह्मचारियों ने। पाणिनि का पुनरुद्धारक, साधनपूर्व भाषानुवादक, साहित्य विज्ञान के पथ का प्रचारक कौन था ?एक ब्रह्मचारी। सुतराम देखा जाता है कि भारत-भूमि का जो कुछ संबल, जो कुछ गौरव, जो कुछ प्रतिष्ठा थी उस सबके मूल में ब्रह्मचर्य ही विद्यमान था। अतः जब तक ब्रह्मचर्य का अनुष्ठान होना रहेगा, तब तक भारत के विलय होने की सम्भावना नहीं हो सकती। जब तक ब्रह्मचर्य का अभ्युदय होता रहेगा। तब तक आर्य जाति के लिए निराश होने का कोई कारण नहीं है। यह निश्चित है कि यदि आर्यावर्त्त फिर जागेगा तो ब्रह्मचर्य के ही प्रभाव से जागेगा। यदि इन पददलित, परानुग्रह-जीवी हिन्दुओं का पुनरुत्थान होगा तो ब्रह्मचारियों के द्वारा ही होगा। यदि आर्यो का प्रनष्ट गौरव फिर कभी वापस आकर चमकेगा तो ब्रह्मचर्य की ही महिमा से चमकेगा, क्योंकि बल, वीर्य, मेधा, धारण-शक्ति, नीरोगता और शारीरिक पराक्रम जिस प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर हैं, मनुष्य की आशा, उत्साह, अध्यवसाय, कष्ट, सहिष्णुता, श्रम-शीलता, तितिक्षा और अटल प्रतिज्ञा आदि का संचार और परिपुष्टि भी उसी प्रकार ब्रह्मचर्य पर निर्भर है। जैसे दयानन्द अपने जीवन में निष्कलंक ब्रह्मचर्य का परिचय देकर अपनी विद्या, पाण्डित्य और प्रतिभा आदि के विषय में असाधारणत्व को प्रतिष्ठित कर गये हैं, वैसे ही वह अपने जीवन में ब्रह्मचर्य को सर्वोच्च आसन पर स्थापित करके इस देश का महान् उपकार कर गये हैं।''

इसी शीर्षक में वे एक अन्य स्थान पर लिखते है -

''वह बार-बार कहा करते थे कि यदि इन मृतप्राय हिन्दुओं को पुनर्जीवित करना है, हृतसर्वस्व आर्यावर्त्त के शिर को एक बार फिर गौरव-मुकुट से मण्डित करना है तो उसका उपाय ब्रह्मचर्य की रक्षा करने के सिवाय अन्य कुछ नहीं है। इसीलिए उन्होंने प्राचीन ब्रह्मचर्याश्रम के पुनरुद्धार के लिए विशेष प्रयत्न किया था और इसीलिए उन्होंन गुरुकुल के स्थापना की व्यवस्था की थी। दयानन्द जैसे स्वयं निष्कलंक ब्रह्मचारी थे और जैसा लाभ ब्रह्मचर्य के द्वारा उन्होंने स्वयं उपलब्ध किया, वैसे ही निष्कलंक ब्रह्मचारी वह अन्य साधारण मनुष्यों बनाके वैसा ही लाभ उन्हें उपलब्ध कराना चाहते थे। इसी हेतु वे अपने देशवासियों से ब्रह्मचर्य धारण करने का बारम्बार साग्रह अनुरोध करते थे।''

आजीवन अखण्ड ब्रह्मचारी रहकर जहाँ उन्होंने अपने जीवन में विलक्षण क्रान्ति की, वहाँ उन्होंने अपने ओजस्वी विचारों से न केवल भारत में अपितु समस्त संसार में एक तहलका मचा दिया। यह उनके ब्रह्मचर्य का ही प्रभाव था।

(साभार-दिव्य दयानन्द)

जड़ देवता

जड़ देवता- वेद मंत्रों का विषय भी देवता कहाता है। उस पर विचार नहीं होगा। अतः अन्य जड़ देवताओं पर विस्तार से मनन करें जो इस पुस्तक का मुख्य प्रयोजन है-

वर्तमान समय में भारत भर में दो प्रकार के जड़ देवताओं का पूजन प्रचलित है- १ मनु य कृत २. ईश्वर कृत।

मनुष्य कृत देवता - जिन देवताओं को बनाने में मनुष्य का हाथ किसी न किसी रूप में लगा हो वे सभी देवता मनुष्य के बनाये हुये माने जाने चाहिये। विडम्बना यह है कि उसके लिये जो मूलभूत पदार्थ लेना अनिवार्य है जैसे पत्थर, लकड़ी, सोना, चाँदी, पीतल आदि धातु, मिट्टी अथवा कागज, प्लास्टिक आदि रासायनिक पदार्थ, इन सब का रचियता मूलतः परमात्मा ही है।

ईश्वर कृत देवता - इन देवताओं की रचना ईश्वर ने संसार के प्रारम्भ में सृष्टि उत्पत्ति के समय की थी, उनसे सारे दृश्य-अदृश्य, जड़ चेतन जगत का कार्य संचालन व पालन हो रहा है। इन देवताओं में जो जो गुण प्रभु ने निश्चित किये हैं उनका धारणा परमात्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ओत प्रोत, व्यापक होकर, स्वयं कर रहा है अतः यह सब देव ईश्वरीय नियमानुसार सृष्टि के आदि से प्रलय पर्यन्त विश्व के कल्याणार्थ अपने गुणों का प्रकाश करते हैं। जीव के निवास इस मानव शरीर एवं सूक्ष्म जीव जंतुओं से लेकर हाथी पर्यन्त के शरीर के व्यापार भी, ईश्वर की कर्मफल व्यवस्था के अनुसार यह जड़ देवता ही ईश्वराज्ञा से करते हैं।

देवता पहचानने की कसौटी

विचारणीय विषय यह है कि देवताओं को पहचानें कैसे ?क्या कोई शास्त्रीय कसौटी है जो असली और नकली अर्थात् ईश्वर के रचे देवता और मनुष्य के बने देवताओं का ज्ञान हमें करा सके ?

सत् शास्त्रों का अध्ययन करने पर हमें पता चलता है कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने अपनी आने वाली सन्तानों के लिये इस कसौटी को लिख कर विश्व का उपकार किया है। निरूक्त वेद की कुंजी कहाते हैं। वर्तमान समय में उपलब्ध निरूक्त में महर्षि यास्क ने इसको लिखा है-

देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थाने भवतीति वा।
निरूक्त अ. ७/खंड १५ एवं ऋग्वेदादि भाष्य - भूमिका।

कसौटी १. दानदाता - वे जड़ देवता जो सबकी भलाई के लिये अपने ईश्वर प्रदत्त गुणों का बिना प्रतिकार लिये, बिना मूल्य लिये हमें दान देते हैं, अपने गुणों से, शक्तियों से निरन्तर जगत का उपकार करते रहते हैं। जो जो कर्तव्य, विज्ञान के नियमों के अनुसार ईश्वर ने उनके लिये निश्चित किये हैं वे कर्तव्य ये देवता संसार की उत्पत्ति के समय से अबाध रूप से प्रलय पर्यन्त करते हैं। वे सच्चे देवता है। यह पहली कसौटी है देवताओं को पहचानने की। देवता को देवता मानने से पहले इस कसौटी पर वह देवता खरा उतरता है या नहीं यह देखना भक्तों का, पूजन करने के इच्छुक लोगों का पहला कर्तव्य होता है। इन देवताओं द्वारा दिया जाने वाला दान प्रत्यक्ष अपनी ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव कर सकते हैं।

कसौटी- २ दीपनकर्ता- देवता को पहचानने की दूसरी कसौटी है- वह दीपन गुणों से युक्त हो। दीपन कहते हैं प्रकाश करने को। प्रकाश का एक गुण फैल जाना, विस्तार करना है। देवता पदार्थो के, द्रव्यों के गुणों को प्रकाशित करता है, विस्तृत करता है। जो गुण जिस पदार्थ में व द्रव्य में है उनको बढ़ाता है। कई गुना कर देता है। यह देवताओं के पहचान की दूसरी कसौटी है। यह दीपन शक्ति देवता में होना आवश्यक है अन्यथा वह भी जड़ देवता कहाने की पात्रता प्राप्त नहीं कर सकता। हर देवता की इस गुण के आधार पर जाँच करें तब उसे देवता मानें।

कसौटी ३. द्योतनकर्ता- ऋषियों ने तीसरी कसौटी इन जड़ देवताओं के पहचानने की दी है- स्वयं प्रकाशित होना और दूसरों को प्रकाशित करना। देव स्वयं प्रकाशित होता है अर्थात् चमकता है, अपने ईश्वर प्रदत्त, मानव मात्र के लिये कल्याणकारी गुणों को प्रदर्शित करता है। अपने इन्हीं गुणों के कारण अन्य जड़ देवताओं को ईश्वरीय आज्ञा पालन करने में सहायता करता है। यह देवता परस्पर सहयोग कर विज्ञान के नियमों के आधार पर ब्रह्माण्ड में अनवरत चल रहे क्रियाकलापों को परमात्मा के नियमानुसार संचालन करने में अपना अपना योगदान देते हैं।

कसौटी - ४ द्यु स्थाने भवति - द्यौ लोक में रह कर सृष्टि के संचालन में जो जड़ दिव्य शक्तियाँ प्रभु आज्ञा का पालन कर रही हैं। वे शक्तियाँ भी देव कहलाती हैं। यह देवता पृथ्वी पर या पृथ्वी के समीप न रहते हुए भी ये जगत कल्याण का कार्य करते रह कर प्रभु आज्ञा का पालन कर रहे हैं अतः वे द्यु स्थानीय होते हुए भी देवता कहाते हैं। यथा- सूर्य, चन्द्रादि।

उपर लिखित पंक्तियों में इन देवताओं के गुणों का, कार्यो का कुछ विस्तार से भावार्थ लिखा है। ईश्वर रचित उपरोक्त गुणों से युक्त देवता कितने हैं एवं कौन से है अब इस पर विचार करना उपयुक्त होगा।

ईश्वर रचित देवता

परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के संचालन हेतु व प्राणीमात्र के कल्याण के लिये देवताओं की रचना की है वे कितने है? एक हैं अथवा अनेक? प्रथम इस पर विचार करें तत्पश्चात् वे देवता कौन से बताये गये हैं जो इन कसौटियों पर खरे उतरते हैं, इस पर मनन करेंगे।

सच्चे देवता कितने ?

शतपथ ब्राह्मण कार याज्ञवल्क्य ऋषि ने लिखा है-

त्रयस्त्रिंशत्वेव देवा इति। शतपथ कांड १४/अ. ६

ये देवता तैंतीस है। प्रायः जनमानस में देवता कितने हैं इस पर चर्चा के समय तैंतीस कोटि देवता हैं ऐसी बात प्रचलित हैं। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि देवता तैतीस करोड़ हैं किन्तु कोटि शब्द के दो अर्थ स्पष्ट हैं १. करोड़ २. प्रकार, श्रेणी। वस्तुतः जड़ देवता तैंतीस प्रकार के अथवा श्रेणी के हैं। व्यवहार में यही देवता माने गये हैं। असंख्य पौराणिक परिवारों में इस विषय में मैंने जानने का प्रयत्न किया किन्तु एक आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि जन सामान्य में देवता कितने हैं इस विषय में कोई

जानकारी नहीं हैं। कौन से हैं इस मामले में भी घोर-अज्ञान ही है। कहीं कहीं अग्नि, सूर्य आदि देवों का उल्लेख हुआ भी किन्तु आगे चुप्पी। संस्कारवश, परम्परावश जो कुछ ज्ञान है वह भी अपूर्ण एवं भ्रमित है ऐसा सर्वत्र लेखक ने पाया। अतः नम्र निवेदन है कि पूर्वाग्रह से मुक्त होकर अगर सर्वहितकारी प्राचीन महान वैज्ञानिकों के विचारों पर मनन कर सत्य को हृदयंगम करें तो संसार का कल्याण हो जाये।

तैंतीस देवता कौन से हैं ?

अष्टौवसवः एकादश रूद्राः, द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्चत्रयस्त्रिंशत् इति।.. शतपथ ब्राह्मण, ऋ. भा. भूमिका तैंतीस ईश्वर रचित जड़ देवता हैं- आठ वसु, ग्यारह रूद्र, बारह आदित्य, एक इन्द्र एवं एक प्रजापति (यज्ञ)। कुल ३३ देवता।

आठ वसु

आठ वसु- अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौः, चन्द्रमा और नक्षत्र। इन सबका नाम वसु है। इन्हें वसु इसलिये कहा जाता है कि सृष्टि के सब पदार्थ इन्हीं में बसते हैं। सबके निवास के स्थान यही आठ देव हैं। निवास का आधार होने के कारण इन्हें वसु कहते हैं। प्राणियों एवं अन्य पदार्थों को टिकने का स्थान न हो, क्रिया कलापों के लिये आवश्यक उपादानों की निरन्तर पूर्ति न हो तो संसार का पालन अशक्य हो जाये। इसलिये इन्हें वसु कहा गया है।

उपरोक्त ब्राह्मण ग्रंथ के वचन का आधार भी ईश्वरीय वाणी वेद ही है। यजुर्वेद में इन देवताओं का उल्लेख एक मंत्र में बड़ी उत्तमता से किया गया है देखें-अग्निदेवता वातो देवता सूर्य्यो देवता चंद्रमा देवता वसवो देवता रूद्रा देवता दित्या देवता मरूतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पति देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता।। यजु० १४/२०

वेद के आधार पर ही इन जड़-चेतन देवताओं की मान्यता एवं व्याख्या महर्षियों ने की है। अतः जो लोग इस भ्रम में ग्रस्त हैं कि वैदिक धर्मी लोग देवताओं को नहीं मानते और उनकी पूजा (सत्कार) नहीं करते । वे ऐसी मान्यता बिना वैदिक ग्रंथों के स्वाध्याय के ही रखते चले आ रहे हैं। वैदिक कर्मकांडों के विषय में सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर यह सभी भ्रम, आरोप, पूर्वाग्रह दूषित दृष्टिकोण दूर हो जाते हैं। वैदिक सत्शास्त्रों के अध्ययन से ही सच्चे देवताओं का ज्ञान हो सकता है। अन्यथा परम्पराओं के वशीभूत होकर मनुष्य का सारा जीवन अन्धविश्वास व पाखंड में ही व्यतीत हो जाता हे।

(1) अग्नि देवता

अष्ट वसुओं में, यजुर्वेद के उपरोक्त मंत्र में भी, सर्वप्रथम अग्नि को ही स्थान दिया है। दैनिक जीवन में हम जिस अग्नि से कार्य लेते हैं वह भौतिक अग्नि है इस अग्नि के अगणित उपयोग हम अपने दैनिक जीवन में करते हैं। इसके बिना हम अपने पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का निर्वाह नहीं कर पायेंगे। घरों कारखानों में इस अग्नि के अभाव में सभी कार्य रूक जायेंगे। हमारा जीवन दूभर हो जायेगा। अग्नि का अनुभव स्पर्श और रूप दोनों से होता है।

अग्निर्वाभूत्त्वा मुखं प्रविशत् ....ऐतरेय उपनिषद्

उपनिषदकार ऋषि कहते हैं अग्नि ही वाणी बनकर मुख में प्रविष्ठ हो गया अर्थात वाणी (बोलने की शक्ति) भी अग्नि के कारण ही शरीर में कार्य करती है। सृष्टि उत्पत्ति के समय अग्नि की उत्पत्ति कैसे हुई इस विषय में तैत्तिरीय उपनिषद के ऋषि लिखते हैं-

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः।
वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः।
ओषधिभ्योऽन्नम्। अन्नारेद्रतः। रेतसः पुरुषः। स वा एष
पुरुषोऽन्नरसमयः। ......तैत्तिरीयोपनिषद्

इस वचन से सिद्ध है कि वायु के परमाणुओं में घर्षण से अग्नि की उपत्ति हुई थी। इस का केन्द्र सूर्य है इसीलिए अग्नि की लपटें हमेशा ऊपर की ओर अर्थात् सूर्य की ओर ही उठती दिखायी देती है। यहाँ पर न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का नियम सत्य सिद्ध नहीं होता।

सृष्टि में प्रतिपल संघटन-विघटन, संयोग-वियोग की प्रक्रिया अबाध रूप से निरन्तर चलती रहती है। ये प्रक्रियाएं भौतिक हों या रासायनिक अग्नि की उपस्थिति आवश्यक है। अग्नि के अभाव में मानवमात्र के कल्याणार्थ चल रहा सृष्टि यज्ञ रूक जायेगा। इसलिये कहा है-

अग्निर्भूतानामधिपतिः ....अग्नि पंचमहाभूतों का अधिपति है

अग्नि ही हमारे जठर में (पेट, पाचन संस्थान) में है इसे जठराग्नि कहते हैं। पर्याप्त भूख लगने पर भी हम भोजन न करें तो पेट में आग सी जलती प्रतीत होती है। यही अग्नि है जो खाये हुए अन्न को पाचक रसों से सूक्ष्म करके क्रमशः रस, रक्त, मांस, मेद (चरबी), अस्थि (हड्डियाँ), मज्जा और उससे शुक्र (वीर्य) बनाकर शरीर को शक्ति, ऊर्जा और पोषण प्राप्त कराती है। शरीर का ताप जो सामान्य अवस्था में ९८.५ डिग्री रहता है वह शरीरस्थ अग्नि के कारण ही है। अग्नि द्यु लोक में सूर्य रूप में, अंतरिक्ष में विद्युत रूप में, पृथ्वी पर पार्थिव अग्नि के रूप में, रहकर सृष्टि चक्र को संचालित कर रहा है। विश्व में सर्वत्र परमाणु में व्याप्त अग्नि जातवेद अग्नि है। घर में चलता हुआ बिजली का पंखा, कूलर, पंप, रेफ्रिजरेटर, अन्य मशीनें सब अग्नितत्व के ही रूप विद्युत के कारण ही कार्य करते हैं। अग्नि के बगैर बिजली बनना असम्भव है।

शरीर में जब तक अग्नि देवता रहते हैं तब तक वायु देवता का आवागमन बराबर चलता रहता है। अर्थात् सांस चलती रहती है व्यक्ति पेय पदार्थ, भोज्य पदार्थ, संगीत, त्वचा सुख आदि प्राप्त कर सकता है। शरीर का स्वामी आत्मा इन सभी जड़ देवताओं की सहायता से ही कर्मानुसार मन के माध्यम से सुख दुःख को भोगता है। अग्नि, वायु आदि सभी देवता परस्पर समन्वय के द्वारा शरीर यज्ञ को तब तक जारी रखे रहते हैं जब तक शरीर का स्वामी जीवात्मा शरीर में रहता है। वास्तव में अग्नि सच्चा देवता है।

पंच क्लेश

स्मृतिशेष - स्वामी व्रतानन्द जी आचार्य गुरुकुल चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

ओम् कविमग्नि मुपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे, देवममीव चातनम्।

सामवेद :

सामवेद के इस मंत्र का भावार्थ यह है कि हे मनुष्य तू सर्वदा अध्वरे अर्थात् यज्ञमय जीवन में तत्पर रह और अविद्या क्लेश की निवृत्ति के लिए कवि स्वरूप ओम् की स्तुति प्रार्थना और उपासना प्रतिदिन किया कर।

पहला क्लेश है अविद्या क्लेश :

इसका लक्षण यह है कि 'अनित्याशुचिदुखानात्मसु नित्यशुचि सुखात्मख्यातिरविद्या'। अनित्य पदार्थ को नित्य समझना अथवा नित्य पदार्थ को अनित्य समझना और अपवित्र पदार्थ को पवित्र समझना अथवा पवित्र पदार्थ को अपवित्र समझना और दुःख देने वाले पदार्थो को सुख देने वाले तथा सुख देने वाले पदार्थो को दुःख देने वाले समझना जो आत्मा नहीं है उसको आत्मा समझना अथवा जो आत्मा है उसको अनात्मा समझना। इसके कारण जो क्लेश होता है उसको अविद्या क्लेश कहते हैं।

द्वितीय क्लेश अस्मिता क्लेश है :

महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में इसका लक्षण किया है कि 'द्रष्टृ दृश्ययोः एकात्मकता अस्मिता'। द्रष्टा और दृश्य की अर्थात् आत्मा को और बुद्धि आदि को एक दूसरे के समान समझना और मैं क्या हूँ इसको न समझना। इस अविवेक से जो क्लेश उत्पन्न होता है उसका नाम अस्मिता है।

तृतीय क्लेश है राग क्लेश :

राग क्लेश का लक्षण महर्षि पतंजलि जी ने यह किया है कि 'सुखानुशयी रागः'। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, इन पाँचों विषयों में सुख को अनुभव करना राग क्लेश कहलाता है। इस विषयासक्ति से जिस दुःख समूह को सब जीव भोगते हैं उस क्लेश का नाम राग है। सुरीले शब्दों के प्रलोभन में फंसकर हरिण शिकारी की बजायी बांसुरी को सुनकर अपने शत्रु के समीप आ जाता है शिकारी उसे पकड़ लेता है। ऐसे ही अन्य चार जीव भी विषय सुख के प्रलोभन में आकर मौत के मुंह में फंस जाते हैं यह तो शब्द के प्रलोभन का परिणाम है। स्पर्श विषय के प्रलोभन में हाथी फंसकर पकड़ा जाता है। शिकारी हथिनी की मूर्ति को जंगल में रख देते हैं हाथी उसको बुरी तरह से छूता है इसका बुरा परिणाम यह होता है कि वह शिकारी की पकड़ में आ जाता है। ऐसे ही पतंगा प्रकाश के सुन्दर रूप के प्रलोभन में बहुत गरम दीपक के समीप भी आकर जलकर मर जाता है। ऐसे ही मछली की बड़ी दुर्गति होती है। इसके विषय में एक कवि ने कहा है कि मछली आती खाने आटा, पर उसको चुभ जाता कांटा। मछियारा समुद्र, नदी आदि के किनारे आकर मछलियों को प्रलोभन में डालने के लिए जलाशय में आटे की गोलिया फेंकता है, रस के प्रलोभन में फंस कर मछलियाँ बड़ी खुशी से उन गोलियों को खा लेती हैं गोलियों से पकड़ी जाती है जिसके कारण मछलियों की मृत्यु हो जाती है। ऐसे ही गन्ध विषय की आसक्ति व प्रलोभन में फंसने वाला

भंवरा सुगन्धित फूलों पर आकर बैठ जाता है और अधिक सुगन्ध लेने के लिए फूल में बन्द हो जाता है। प्रातः काल होने पर वह फूल में ही बैठा-बैठा मर जाता है। इससे विदित हुआ कि विषयासक्ति में सुख मानने से सब प्राणियों को बहुत दुःख भोगना पड़ता है। अतएव शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध के प्रलोभन से बचकर हम सब मनुष्यों को अशब्द, अस्पर्श, अरूप, अरस, अगन्ध, अनश्वर ओम् के ध्यान में निमग्न रहना चाहिए। इसलिए आदर्श वानप्रस्थी श्रीमान् भर्तृहरि जी ने ये शिक्षा दी है कि ''वैराग्यमेवाभयम्'' सच्चे सुख की प्राप्ति का उपाय वैराग्य ही है।

चतुर्थ क्लेश द्वेष क्लेश है :

इसके लक्षण महर्षि पतंजलि जी ने यह किया है कि 'दुःखानुशयीद्वेषः'। संसार में परस्पर द्वेष करने का परिणाम बड़ा भारी दुःख है इसलिए हमारे शत्रु अंग्रेजों ने हमें चिरकाल तक परतंत्र करने के लिए हमारे में फूट व द्वेष फैला दिया था। इस द्वेष से बचने के लिए महर्षि पतंजलि जी ने यह उपाय बताया है कि हमें अहिंसा व्रत का पालन सर्वदा सर्वत्र करना चाहिए। इसलिए वेद मंत्र के द्वारा ओम् हमें बताता है कि 'अविद्वेष कृणोमिवः'। हे मनुष्यों मैं तुम सबको द्वेष रहित करता हूँ। इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि प्रेम के अनन्त भण्डार दैव स्वरूप ओम् की प्रतिदिन स्तुति प्रार्थना और उपासना किया करें।

पंचम क्लेश अभिनिवेश क्लेश है :

इसका अर्थ मरने से डरना है। अर्थात् मृत्यु के भय के कारण जो क्लेश होता है उसी को अभिनिवेश क्लेश कहते है। इस क्लेश की निवृत्ति के लिए गीता में योगीराज श्री कृष्ण जी ने बहुत श्रेष्ठ उपदेश दिया है कि -

वासांसि जीर्णानि यथाविहाय,
नवानिगृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय, जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानिदेही।। गीता अध्याय २ श्लोक २२

इसका तात्पर्य यह है कि जैसे मनुष्य पुराने कपड़े को उतार नया कपड़ा पहने में सुख अनुभव करता है ठीक वैसे ही देहरूपी पुराने शरीर को छोड़ना ही मृत्यु है और नए शरीर को धारणा करना ही जन्म है। इसलिए सच्चे आर्य मृत्यु से कभी नहीं डरते। इस प्रकार से अन्य पांच उपायों से भी इन क्लेशों की निवृत्ति होती है।

●●●

महर्षि दयानन्द और विश्व-शान्ति

स्मृतिशेष - महात्मा श्री आर्यभिक्षु

महर्षि जैमिनी के पश्चात् ऋषि परम्परा में स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रथम महापुरुष है, जिन्होंने शाश्वत सनातन तथा सार्वभौम मानव-धर्म वेद धर्म की दुहाई ही नहीं दी, अपितु उसके लोप होने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न संसार के समस्त मत, तन्त्र तथा सम्प्रदायों की विधिवत् समीक्षा की (सत्यार्थ प्रकाश ११ से १४ वें समुल्लास तक)। वह स्वयं स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में लिखते हैं ब्रह्मा से लेकर जैमिनी पर्यन्त ऋषि-मुनियों द्वारा अनुमोदित प्रतिपादित सनातनधर्म ही हमारा धर्म है। इसे मानना व मनवाना अपना अभीष्ट। किन्तु कोई भी नूतन मत, पन्थ अथवा सम्प्रदाय चलाने की किञ्चित्मात्र भी इच्छा नहीं है। ऐसा लिखने में उनका हेतु उनके शब्दों में स्पष्ट है। सर्व सत्य का प्रचार कर सबको एक मत में करा द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीतियुक्त कराके सब को सुख लाभ पहुँचाने के लिए मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है। इस कथन में उनके हृदय में विश्व-शान्ति के लिए एक ठोस रचनात्मक पुरोगम की स्पष्ट आभा मिलती है।

संसार में अशान्ति के हेतु दो ही मौलिक हेतु हो सकते है। प्रथम भोग सामग्री की वितरण व्यवस्था और द्वितीय, भोक्ता का भोग के साथ सम्बन्ध। प्रथम स्थिति का समाधान सामाजिक क्रान्ति तथा राजनैतिक उथल-पुथल से होता रहता है। द्वितीय के लिये स्थान, समय तथा परिस्थिति के आधार पर पुरुष विशेष द्वारा उपस्थित विचार तथा विधि कार्य करते हैं। पहले के विस्तार स्वरूप राजतन्त्र से लेकर लोक तन्त्र तक की व्यवस्थाओं का प्रादुर्भाव हुआ और दूसरे के विस्तार स्वरूप मत, ग्रन्थ तथा सम्प्रदाय के रूप में पारसी, ईसाई, मुसलमान, बौद्ध, जैन इत्यादि आचार पद्धतियों का प्रादुर्भाव हुआ। (जिन्दावस्ता, बाइबिल, कुरान, धम्मपद, त्रिपिटक)। इन्हीं दोनों पाटों के बीच विश्व की शान्ति पिसती रही और आज अपने शिखर पर पहुँच चुकी है। विश्व में अशान्ति के मूल कारणों में दो प्रमुख है। राजनीतिक मान्यताओं की रस्सा-कसी और मत-मतान्तरों की संख्या वृद्धि में होड़ की प्रवृत्ति। विश्व के इतिहास में जारशाही और उसका दुःखद अन्त एक ओर है, तो ईसाई मत की ही दो शाखाओं, कैथलिक और प्रोटेस्टेन्ट के मध्य की रक्त-रंजित बीभत्स गाथायें दूसरी ओर है। इस प्रकार जब दोनों ओर की स्थिति अत्यन्त भयावह तथा नाशकारी स्वरूप में विद्यमान थी तब इस धरा धाम पर बाल-ब्रह्मचारी, युगपुरुष, क्रान्ति-द्रष्टा भगवान दयानन्द का प्रादुर्भाव आर्यावर्त की पवित्र ऋषि भूमि में सम्पूर्ण अविद्या तथा अज्ञान का नाश करके विश्व-शान्ति स्थापनार्थ उन्नीसवीं सदी के मध्य में हुआ।

महर्षि दयानन्द दया का था सागर,
जगत की व्यथा का दवा बनने आया।
तिमिर छा रहा था अविद्या का घरघर,
गगन में दिवाकर नया बनके आया।।

महर्षि ने इस व्यापक अविद्या, अज्ञान तथा सत्य को भेद न करते हुए सिंहनाद किया, ''मेरा अपना मन्तव्य वही है जो सब को तीन काल में एक सा मानने योग्य है। मेरी कोई अपनी नवीन कल्पना नहीं है, अपितु जो सत्य है उसे मानना और मनवाना और जो असत्य है उसे छोड़ना और छुड़वाना अपना अभीष्ट है।'' इसी सत्य के प्रकाशन संदर्भ में उन्होंने विश्व के समस्त नागरिकों के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक जय घोष दिया - ''अपने देश में अपना राज्य'' इस प्रकार संसार के समस्त पराधीन राष्ट्रों की

एक नूतनचेतना तथा स्फूर्ति इस दिशा में प्राप्त हुई और अपने देश के साथ ही अन्य पराधीन राष्ट्र भी स्वाधीनता के लिए खड़े हो गये। अनेकों ने परिणाम स्वरूप वर्षों की दासता से मुक्ति पाई और आज भी अनेक इस दिशा में संघर्षरत हैं। यह सब भगवान् दयानन्द के एक मन्त्र का चमत्कार है। उर्दू के एक कवि ने ठीक ही कहा है-

तू नहीं, पैगाम तेरा हर किसी के दिल में है।
जल रही अब तक शमा रोशनी महफिल में है।।

महर्षि ने इस दिशा में स्थायित्व लाने के निमित्त एक आन्दोलन का भी सूत्रपात किया- वह था संसार के श्रेष्ठ पुरुषों का संसार के कल्याण के लिए एक वेदी पर उपस्थित होना। इस आन्दोलन को निरन्तर चालू रखने के लिये संगठन का गठन भी किया जिसे आर्यसमाज अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का संगठन कहते हैं। महर्षि ने इस आन्दोलन के तीन चरण निश्चित किये- एक ईश्वर, एक धर्म तथा एक विश्व संसार में अनेक महापुरुषों ने इस दिशा में अपनी योग्यता तथा क्षमता के अनुसार कार्य किया किन्तु इस मौलिक त्रिसूत्र के अभाव में उनके सम्पूर्ण प्रयास विफल रहे। उदाहरण स्वरूप मार्क्स का सर्वहारा दर्शन तथा गांधी जी का सर्वोदय। यहां एक ईश्वर से तात्पर्य एक प्राप्तव्य से है। एक धर्म से अभिप्राय एक आचरण-संहिता से है और एक विश्व से अर्थ एक परिवार से है। जिस प्रकार से एक परिवार में रहने वालों का एक आदर्श इसकी प्राप्ति का एक माध्यम अर्थात् सभी साधकों के साधन तथा साध्य का समञ्जस्य। महर्षि ने इसके लिए तर्क युक्ति, प्रमाण तथा प्रयोग के आधार पर संसार के प्रमुखतम आचार्यो से वार्ता की और अपेक्षित प्रयास भी किया। उनके शब्दों में विश्व की अशान्ति का मूल कारण इस प्रकार के भेदों के माध्यम से उत्पन्न होने वाला घृणा और द्वेष का वातावरण ही है। यद्यपि प्रत्येक मत, पन्थ तथा सम्प्रदाय में कुछ-कुछ अच्छी बातें हैं तथापि आचार्यों में परस्पर मतभेद होने के कारण अनुयायियों में मतभेद कई गुणा बढ़कर घृणा और द्वेष की उत्पत्ति करता है। क्या ही अच्छा होता कि सभी आचार्य प्रवर एक स्थल पर बैठ कर मनुष्यमात्र के लिए सर्वतन्त्र, सार्वभौम तथा सनातन नियमों का संकलन कर पाते, जिससे मानव समाज घृणा और द्वेष से मुक्त होकर श्रद्धा और स्नेह की पवित्र स्थिति को प्राप्त होता। उन्होंने चांदपुर (उत्तर प्रदेश) में एक धर्म मेला के अन्दर इस प्रकार के विचार-विमर्श की व्यवस्था भी की। उसमें पादरी, मौलाना, पण्डित सभी उपस्थित थे। महर्षि ने तर्क, युक्ति, प्रमाण और प्रयोग से उन सब को सहमत न होते देख अन्ततोगत्वा एक अद्वितीय विधि उपस्थित की। सब अपने-अपने मत के श्रेष्ठ विचार पृथक-पृथक पत्रों पर लिखें। पुनः सब को एक साथ एकत्रित कियाजाये और जो-जो विचार तथा आचार उपिस्थत हों उनमें से सर्वमान्य विचार-आचार एक स्थल पर संकलित कर लिये जावें और हम सब उन पर हस्ताक्षर कर देवें, जिससे यह आचरण संहिता संसार के सभी मनुष्यों के लिए मान्य, व्यावहारिक तथा उपयोगी घोषित हो जावे और इस प्रकार परस्पर विभिन्न मतमतान्तरों के आधार पर विभाजित मानव समाज एकता के सूत्र में बंध कर विश्व में शान्ति स्थापित कर सके। उपस्थित किसी भी प्रतिनिधि (हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई तथा ब्राह्म-समाज) ने इसका स्वागत अपने क्षुद्र स्वार्थ तथा नेतागिरि के कारण नहीं किया।

महर्षि भौतिक जगत् में भी अर्थ के दूषित वितरण के परिणाम का समाधान बताते हैं जो आज की समस्या का एकमात्र हल है। आज मजदूर जहां एक ओर कम से कम काम करना चाहता है, वहीं दूसरी ओर अधिक से अधिक वेतन चाहता है और इसी प्रकार महाजन जहां एक ओर अधिक से अधिक काम लेना चाहता है वहीं दूसरी ओर कम से कम वेतन देना चाहता। तात्कालिक समाधान के रूप में इस विषम मनोवृत्ति के परिणाम स्वरूप ही, मजदूर यूनियन कर्मचारी संघ तथा मर्चेन्ट एसोसियेशन का विश्व

में जाल बिछा दीखता है। समाधान तो ऋषि इसे पूर्णतया उलट देने में मानते हैं। अर्थ क्या हुआ ?मजदूर अधिक से अधिक काम करें और कम से कम वेतन लेने की इच्छा रखे और महाजन कम से कम काम लेकर मजूदरों को अधिक से अधिक देने की कामना करें। विश्व-शान्ति के लिए व्यक्ति को कम से कम समाज से लेना होगा और अधिक से अधिक समाज को देना होगा तभी वर्तमान अशान्ति, अनिश्चिन्तता तथा अराजकता का अन्त होगा अन्यथा कदापि नहीं। मुझे कहने दीजिए- आज हमें भोग में बसा-होटल की प्रवृत्ति से हट कर परिवार में पाकशाला प्रवृत्ति में आना होगा। हम जब होटल में भोजन करते हैं तो कम से कम होटल वाले को देकर अधिक से अधिक खा लेना चाहते हैं। किन्तु जब हम परिवार में भोजन करते हैं तो कम से कम खाकर अधिक से अधिक परिवार के अन्य सदस्यों के लिए छोड़ना चाहते हैं। ऐसा मन कब बनेगा ?जब तन के निखार निमित्त दर्पण की भांति हमें मन के सुधार के लिए दर्शन मिलेगा। यह दर्शन जिस आचरण-संहिता में उपलब्ध है। वह परमात्मा द्वारा प्रदत्त अपनी प्रजा के निमित्त विधि-निषेधात्मक वेद-ज्ञान है,जो सम्पूर्ण सृष्टि की अवधि के भीतर (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष) उपस्थित विश्व के सभी श्रेष्ठतम उपभोक्ताओं मनुष्यमात्र के लिए समान रूप से सुखदायक तथा उपयोगी है। उससे हम न्यूनतम परिश्रम द्वारा अधिकतम सुख प्राप्ति कर सकते हैं। इसे उपभोग के नियम- लातगयर कवायद कहते हैं। इसके अनुकूल चल कर हम शाश्वत सुख-आनन्द-मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं। जो मानवमात्र का एकमात्र अभीष्ट लक्ष्य है। इस आचरण-संहिता का प्रमुख भाग कर्मफल मीमांसा कहलाता है और वह इस प्रकार है- दर्शनकारी की व्यवस्था में आयु, जाति तथा भोग मनुष्य को पूर्व जन्म के आधार पर ही मिलते हैं। (यहां जाति शब्द का तात्पर्य योनि- पशु, पक्षी, पतंग, मनुष्य आदि से है) भोग दो प्रकार के हैं- एक सुखद तथा दुःखद। दुःखद भोग में हम किसी का सहयोग प्राप्त कर ही नहीं सकते। कौन होगा ऐसा जो मेरे पचास बेत के दंड में कुछ स्वयं सहन कर मेरा सहयोग करना चाहेगा। किन्तु सुखद भोग में हम किसी को भी अपना भागीदार बना सकते हैं, और कोई भी भागीदार बनने को तैयार हो सकता है। उदाहरणार्थ मेरे पास भोग के पचास आम हैं। हम सब स्वयं भी खा सकते हैं और इनमें से आवश्यकतानुसार तथा इच्छानुसार चार आम खा कर शेष इक्कीस आम किसी को भी खाने को दे सकते हैं। स्वयं सम्पूर्ण खा जाने पर भोग मूलतया समाप्त हो जाता है। किन्तु कुछ खाकर और शेष दूसरों को खिला कर हम दूसरों को खिलाये हुये आमों के भोग के द्वारा अपने लिये नूतन कर्म का सृजन कर लेते हैं जो हमें पुनः इस जन्म अथवा दूसरे जन्म में मिलेगा। इस दर्शन के प्रचार और प्रसार में प्रत्येक व्यक्ति खाने के चक्कर से निकल कर खिलाने की होड़ में खड़ा हो जायेगा। तब विश्व में अशान्ति का प्रश्न ही नहीं रहेगा और स्थायी शान्ति स्वतः उपस्थित हो जायेगी। आज हम व्यवहार पक्ष में ऐसा मानते हैं - मूर्ख व्यक्ति खिलाते हैं और बुद्धिमान व्यक्ति खाते हैं। किन्तु स्थिति तब बदल जावेगी और नई लोकोक्ति तैयार होगी- बुद्धिमान व्यक्ति खिलाते हैं और मूर्ख व्यक्ति खाते हैं। परिणाम स्वरूप समस्त मानव समाज एक परिवार की संज्ञा को प्राप्त हो जावेगा जिसका प्रत्येक सदस्य कम से कम उपयोग करके अधिक से अधिक दूसरों के उपभोग निमित्त छोड़ने में अपने सम्पूर्ण विवेक और कौशल को लगा देगा, जिससे विश्व-शान्ति का महर्षि कल्पित रूप साकार हो उठेगा।

अपनी आवश्यकता से अधिक पर अपना अधिकार मानना सामाजिक हिंसा है। इससे बचना ही विश्व-शान्ति का एकमात्र हल है।

●●●

हमारी प्रश्नोत्तरी

प्रश्न-१ मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्री राम के सभी भाइयों का नाम बड़े से छोटे क्रम में बताइये?

प्रश्न-२. पाँचो पाण्डवों के नाम बड़े से छोटे क्रम में बताइये?

प्रश्न-३. पंचपल्लव में किन-किन वृक्षों के पत्ते समाहित हैं?

प्रश्न-४. ओंकार (ओ३म्) में कुल कितने व कौन-कौन से वरण हैं?

प्रश्न-५. योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण का जन्म किस मास, पक्ष व तिथि में हुआ?

प्रश्न-६. हाथ की पाँचो उंगलियों के नाम हिन्दी में बताइये?

प्रश्न-७. गीता में कुल कितने अध्याय हैं?

प्रश्न-८. प्रसिद्ध गायत्री मंत्र में कितने वर्ण हैं? मंत्र भी लिखिये।

प्रश्न-९. महर्षि दयानन्द का जन्म कब और कहाँ हुआ था?

प्रश्न-१०. यर्जुवेद अध्यायों की संख्या कुल कितनी हैं?

– विशेष –

इन प्रश्नों का उत्तर आप भी हमारे व्हाट्सऐप-नम्बर-९८३९९५०१२१ पर पोस्ट कर सकते हैं।

क) पोस्ट में अपना नाम व पता अवश्य लिखें।

ख) उत्तर देने हेतु आयु आदि का बन्धन नहीं है।

ग) सही उत्तर देने वाले प्रतिभागियों का नाम अगले अंक में प्रकाशित किया जायेगा व लगातार दो से अधिक अंकों के सही उत्तर देने वाले प्रतिभागियों को सम्मानित किया जायेगा।

पिछली प्रश्नोत्तरी व उत्तर–

प्रश्न-१ वैदिक संस्कृति में मानव जीवन को कितने आश्रमों में बांटा गया है? नाम भी बतायें?
उत्तर- ४, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम

प्रश्न-२ वेद कितने हैं?उनके नाम क्या हैं? उत्तर- ४, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद।

प्रश्न-३ भारत के किस महापुरुष के नाम के साथ ''मर्यादा पुरुषोत्तम'' विशेषण का प्रयोग होता है?
उत्तर- भगवान श्री राम।

प्रश्न-४ भगवान कृष्ण की पत्नी का नाम बताइए? उत्तर- माता रूक्मिणि

प्रश्न-५ भाषा वैज्ञानिकों ने सभी भाषाओं की जननी किस भाषा को सिद्ध किया है? उत्तर-संस्कृत।

प्रश्न-६ आर्यावर्त किस देश का प्राचीनतम नाम है? उत्तर-भारत।

प्रश्न-७ पंच महायज्ञों में कौन-कौन यज्ञ समाहित है?
उत्तर-ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और वलिवैश्वदेव यज्ञ।

प्रश्न-८ किसी एक उपनिषद का नाम बतायें? उत्तर-ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक आदि कोई एक।

प्रश्न-९ पंचगव्य किसे कहते हैं? उत्तर-गौ दुग्ध, गौ दधि, गौ घृत, गौ मूत्र और गौमय

प्रश्न'१० पंचवटी के सभी वृक्षों के नाम लिखें? उत्तर-पीपल, बरगत, आँवला, बेल और अशोक।

सही उत्तर भेजने वाले प्रतिभागियों के नाम-

१. आचार्य पंकज अवस्थी, तपस्वी छावनी, अयोध्या
२. ब्रह्मचारी सर्वेश ओझा, बीकापुर, फैजाबाद
३. विवेक पाण्डेय, २८-सीता विहार कालोनी, लखनऊ
४. दीपक वर्मा, मोहिबुल्लापुर, लखनऊ
५. मनीष यादव, मड़ियांव गांव, जानकी पुरम, लखनऊ

श्रुति दर्शन पत्रिका के विशेष सहयोगी एवं आजीवन सदस्य

क्र.सं.	नाम	निवास	सदस्य क्रमांक	दिनांक	शुल्क
1.	डॉ. भानुप्रकाश आर्य	H.I.G.40/I. टिकैतराय, LDA कालोनी, राजाजीपुरम, लखनऊ	01	15.8.17	1600/-
2.	श्री अरविन्द कुमार गुप्ता	3/7, जानकीपुरम् विस्तार, लखनऊ	04	15.8.17	1600/-
3.	श्रीमान् पाल प्रवीन	एम.एस.-120, सेक्टर-डी, अलीगंज, लखनऊ	05	15.8.17	1600/-
4.	आर्य समाज राजाजीपुरम		13/14	15.8.17	2601/-
5.	श्रीमती तारा सिंह	जानकी विहार, जानकी पुरम्,	29	20.8.17	1600/-
6.	श्रीमान् चन्द्रभानु सिंह	645ए/162, जानकी विहार कालोनी, मड़ियांव गांव रोड, निकट-प्रभात चौराहा, लखनऊ	30	3.9.17	1600/-
7.	श्रीमान् आर्येन्दु पाण्डेय	आर्य समाज मन्दिर, सवायजपुर, हरदोई	501	23.9.17	1600/-
8.	श्रीमती सत्यप्रभा	सी-1029, कल्याणी विहार, निकट-प्रशांत पब्लिक स्कूल, कमता, लखनऊ	506	3.10.17	10000/-
9.	श्रीमती कविता सहगल	एमएमबी 1/10, सेक्टर-बी, जानकीपुरम् राम राम बैंक चौराहा, लखनऊ	507	3.10.17	10000/-
10.	श्रीमान् अखिलेश मिश्र	जानकी विहार कालोनी, लखनऊ	508	3.10.17	20000/-
11.	श्रीमान् अरविन्द मिश्र	जानकी विहार कालोनी, लखनऊ	509	5.11.17	5100/-
12.	श्रीमान् सेवक राम	त्रिवेणी नगर, लखनऊ	511	19.11.17	1600/-
13.	श्रीमान् राम प्रकाश कश्यप	मोहल्ला आजाद नगर (खैरा) वि.खण्ड पोस्ट-मोहम्मदाबाद, फर्रूखाबाद	22	20.8.17	1600/-
14.	श्रीमान् शिवलाल	589ख/639, अवध नगर, तेलीबाग लखनऊ	23	20.8.17	1600/-
15.	श्रीमान् देवेन्द्र स्वरूप गुप्त	1/50, सेक्टर-ए, जानकीपुरम् लखनऊ	24	20.8.17	1600/-
16.	श्रीमान् सुरेश चन्द्र मिश्र	643ए/7, पल्टन छावनी सीतापुर रोड योजना, लखनऊ	25	20.8.17	1600/-
17.	श्रीमान् काशी प्रसाद शास्त्री	राजाजीपुरम्, लखनऊ	27	20.8.17	1600/-
18.	स्वामी श्रद्धानन्द	बदायूँ			1600/-
19.	श्री ताराचन्द्र श्रीवास्तव	सेक्टर-1, जानकीपुरम् विस्तार, लखनऊ		20.1.18	1600/-
20.	श्री शिव प्रकार गुप्त	खुर्रम नगर, लखनऊ	28	15.12.17	1800/-

श्रद्धांजलि

उत्साहयुक्त, शुचि, सरल हृदय, मुख पर रहता था मन्द हास।
सहसा सबको आश्चर्य हुआ, जब बिछुड़ गये श्री शिव प्रकाश।।

जन्म तिथि
1 जून, 1965
अजीतमल
औरैया
(इटावा, उ.प्र.)

प्रयाण तिथि
21 जनवरी, 2018
खुर्रम नगर,
लखनऊ (उ.प्र.)

स्मृति शेष–श्री शिव प्रकाश गुप्त

जिला वेद प्रचार संगठन-लखनऊ द्वारा स्थापित वेद प्रचार मण्डल खुर्रमनगर के अध्यक्ष श्री शिव प्रकाश गुप्त का लगभग 53 वर्ष की आयु में दिनांक 21 जनवरी, 2018 की रात्रि में हृदयगति रूकने से देहान्त हो गया। 22 जनवरी, 2018 को श्री गुप्त जी की अन्त्येष्टि बैकुण्ठधाम (भैंसाकुण्ड) लखनऊ में वैदिक मन्त्रोच्चार के साथ पुत्री अनुष्का तथा पुत्र सूर्यांशु गुप्त ने विद्वान आचार्यों के निर्देशानुसार सम्पन्न करवाया। दिनांक 24 जनवरी, 2018 को श्री गुप्त जी के खुर्रम नगर स्थित आवास पर शान्तियज्ञ के आयोजन में उपस्थित भारी जनसमूह ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की। इस अवसर पर सत्यनारायण वेद प्रचार ट्रस्ट के संस्थापक आचार्य विश्वव्रत शास्त्री ने गुप्त जी के उत्साही व सरल व्यक्तित्व की चर्चा करते हुये परिजनों से धैर्य धारण करने का निवेदन तथा आत्मिक शान्ति व परिजनों हेतु परमेश्वर से धैर्य प्रदान करने की प्रार्थना की।

इस अवसर पर श्रीमती कान्ति कुमार, रामगोविन्द ठाकुर, रामेन्द्र देव वर्मा, महात्मा प्रेम मुनि व वंशमुनि, श्री आर.के. शर्मा, श्रीमती प्रियंका शास्त्री, श्रीमती कविता सहगल सहित सभी ने गुप्त जी के सरल स्वभाव की चर्चा करते हुये अपनी संवेदनायें प्रगट की।

उत्तर प्रदेश के औरैया जनपद के अजीतमल में सन् 1965 में जन्मे गुप्त जी अपने पीछे श्रीमती सीमा गुप्ता (पत्नी) दो पुत्री कु० दीक्षा व कु० अनुष्का तथा एक पुत्र सूर्यांशु (तीनों अविवाहित) को छोड़ अनन्त यात्रा को चले गये।

सत्यनारायण वेद प्रचार ट्रस्ट व अवान्तर संस्थायें पुनः परमेश्वर से आत्मिक सद्गति व पारिवारिक धैर्य हेतु प्रार्थना करती है।

विविध चित्रावली

वेद प्रचार लखीमपुर खीरी

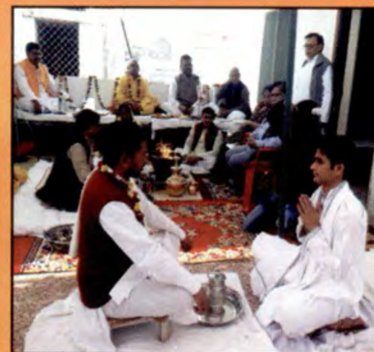

स.सम्पादक-श्री शिव शंकर वैश्य
के पुत्र आयु. अमृत का यज्ञोपवीत संस्कार

सामवेद पारायण यज्ञ,
विकास नगर, लखनऊ

समारोह की सफलता पर ट्रस्ट व संगठन के
संस्थापक-आचार्य विश्वव्रत शास्त्री का सम्मान
करते हुए समस्त मण्डलों के अध्यक्ष

वेद प्रचार मण्डल डिलाइट होम्स का
स्थापना समारोह

स्त्री रोग विशेषज्ञ-डॉ. प्रतिभा सचान
का जन्म दिवस समारोह गुरूकुलम् में

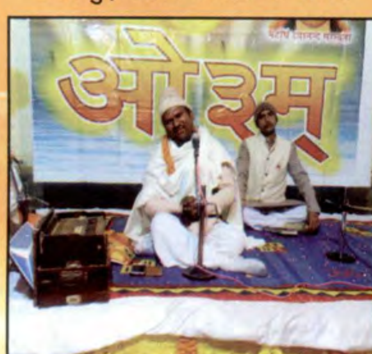

वेद प्रचार पटेल धर्मशाला-वाराणसी

गुरूकुलम् में राष्ट्रीय सेवा योजना द्वारा
सप्तदिवसीय शिविर के अवसर पर क्रिश्चियन
कालेज के छात्रों की उपस्थिति

पंजीयन सं.-UPHIN/2017/48530(TC)

सत्यनारायण वेद प्रचार ट्रस्ट एवं जिला वेद प्रचार संगठन लखनऊ के संयुक्त तत्वावधान में आर्ष गुरुकुलम में आयोजित दो दिवसीय (२१ व २२ जनवरी, २०१८) १०८ कुण्डीय यज्ञ व वेद कथा की झलकियाँ

मंच

वेदकथा

108 कुण्डीय यज्ञ

शिविर कार्यालय (पत्राचार हेतु)
५/११८, जानकीपुरम् विस्तार, निकट-अटल चौक, लखनऊ-२२६०२१
कार्यालय
सी/१६६, जानकीविहार कालोनी, जानकीपुरम्, लखनऊ
सम्पर्क सूत्र-७७८३६३७४५५, ६१६१०५३८६४, ६८३६६५०१२१, ६४१५६१०५०२

SHUBHAM PRINTERS # 9415582032